द्धयोग

योग सिद्धान्तों
एवं
शिक्षाओं का
प्रतिपादक मासिक

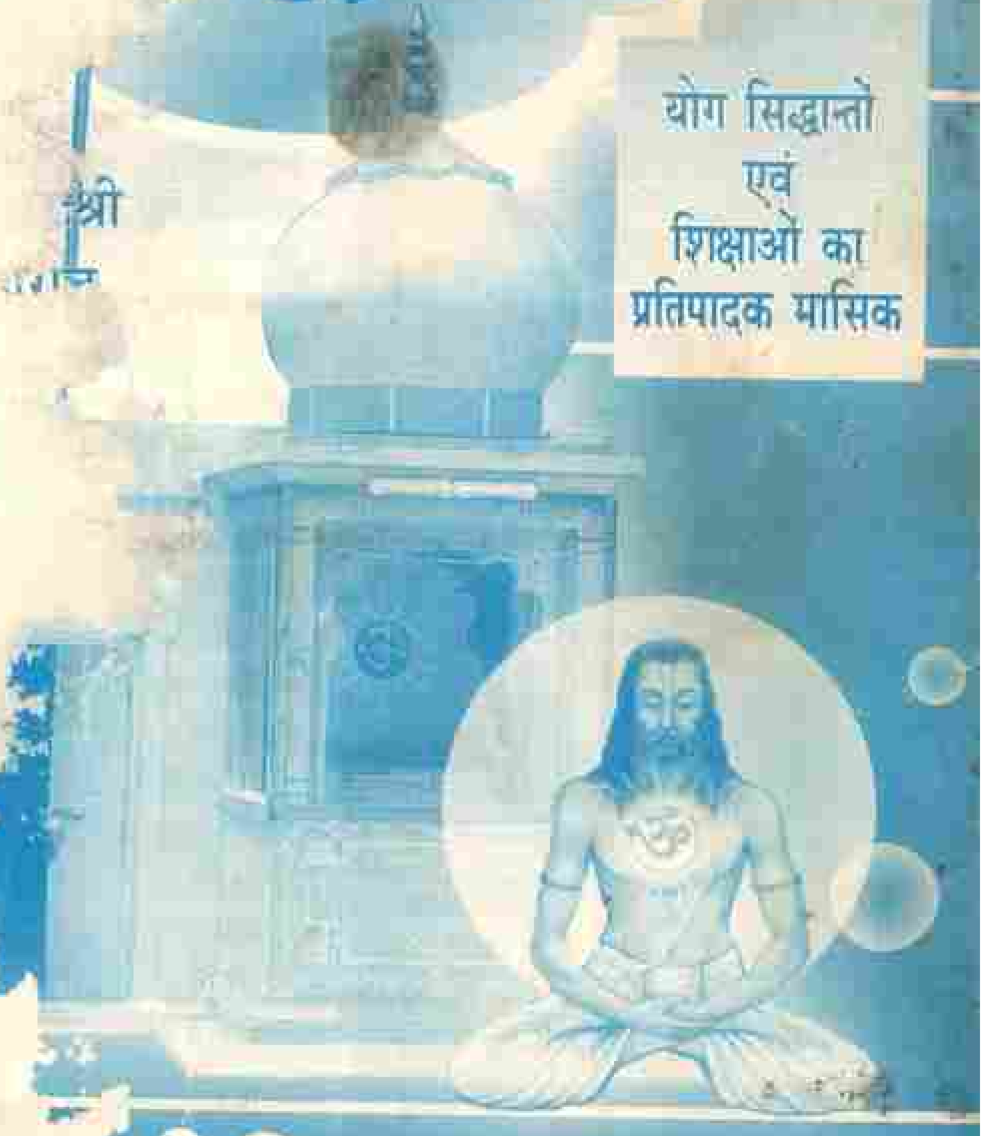

श्री

ी सिद्धगुफा प्रकाशन

पुई-283202 (आगरा) उ.प्र.

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

संपादक:
आचार्य (डॉ.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त संपादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध संपादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

एक प्रति	रु.	09.00
वार्षिक शुल्क	रु.	90.00
द्विवार्षिक	रु.	170.00
आजीवन	रु.	800.00

इस अंक में ..

- अमृत कण — 2
- मेरे श्री गुरुदेव (विशेष लेख) — 3
- सम्पादकीय — 11
- ईश्वर के लिए व्याकुलता
  रामकृष्ण परमहंस — 15
- भाव-प्रसून
  श्रीमती सरिता भारद्वाज — 18
- भगवान सदाशिव
  डॉ. विजय सिंह — 19
- छोटे सिद्धों की कृपा
  केशवदेव उपाध्याय — 23
- बस मोहन अपना प्यार दोगे
  कु. रुक्मिणी वर्मा — 28
- संस्कार मुहूर्त एवं जुड़वाँ संतानों के ज्योतिष रहस्य
  पं. महेश बोहरे — 30
- मास्टर हुकुमचन्द की योग साधना
  श्याम लाल — 33
- आश्रम समाचार — 36
- मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि
  पं. राजेन्द्र प्रसाद पाठक — 38

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 36
अंक 2

मई
2003

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मूख विकरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विषदान् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

हमें निर्भय कर दो

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु।
शं नः कुरु प्रजाभ्यः, अभयं नः पशुभ्यः।।

यजु० ३६/२२

हम किसी भी घटना से, किसी भी स्थान में, किसी भी काल में क्यों डरते हैं ? वास्तव में डरने का कहीं भी कोई कारण नहीं है। फिर हे परमेश्वर ! हम इसलिए डरते हैं क्योंकि हम तुम्हें भूल जाते हैं, क्योंकि हम सदा सर्वत्र सब घटनाओं में तुम्हारा हाथ नहीं देखते। यदि हम संसार की सब घटनाओं को तुमसे 'सचेष्टित' देखें, तुम्हारे द्वारा की गई; तुम्हारे द्वारा सम्यक्तया की गई देखें तो हम कभी भी भयभीत न होवें। तुम तो परम मंगलकारी हो, सम्यक् रूपेण चेष्टा करने वाले हो, सदा सबका कल्याण ही करने वाले हो। इसलिए हे प्रभो ! तुम जहाँ–जहाँ से चेष्टा करते हो, जिस–जिस स्थान, काल व कर्म से अपना संचेष्टन करते हो, वहाँ–वहाँ से हमें अभय कर दो, वहाँ–वहाँ से हमें बिल्कुल निर्भयता ला दो। पर तुम कहाँ संचेष्टन नहीं कर रहे हो ? तुम किस जगह नहीं जाग रहे हो ? यानी तुम सर्वत्र ही सब काल में हो।

अमृतकण

यच्छेद्वांमनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि।।

—कठोपनिषद् १/३/१३

अर्थात् बुद्धिमान साधक को चाहिये कि वह पहले वाक् आदि समस्त इन्द्रियों को मन में निरुद्ध करे। उस मन को ज्ञानस्वरूप बुद्धि में विलीन करे। ज्ञानस्वरूप बुद्धि को महान् आत्मा में विलीन करे और उसको शान्त स्वरूप परमपुरुष परमात्मा में विलीन करे।

❖ ❖ ❖

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्।।

मुण्डकोपनिषद २/४

यहाँ ओंकार ही धनुष है; आत्मा ही वाण है और परब्रह्म परमेश्वर ही उसका लक्ष्य कहा जाता है। वह प्रमाद रहित मनुष्य द्वारा ही बींधा जाने योग्य है। अतः उसे भेजकर वाण की तरह उस लक्ष्य में तन्मय हो जाना चाहिये।

❖ ❖ ❖

एको देवः सर्वभूतेषु गुढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।।

श्वेताश्वतरोपनिषद ६/११

समस्त प्राणियों में एक ही देव स्थित है। वह सर्वव्यापक समस्त भूतों का अन्तरात्मा, कर्मों का अधिष्ठाता, समस्त प्राणियों में बसा हुआ, सबका साक्षी, सबको चेतनत्व प्रदान करने वाला, शुद्ध और निर्गुण है।

❖ ❖ ❖

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।।

(गीता १६/२३)

जो वेद शास्त्र विहित विधि को छोड़कर (कामना से प्रेरित होकर) मनमाना काम करते हैं, उनको न तो फल की सिद्धि होती है, न सुख मिलता है, न मोक्ष की ही प्राप्ति होती है।

सद्गुरू शक्ति किसको मिला करती है ?

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज)

मैंने तुम्हें अपने व्याख्यान में यह बताया था कि सद्गुरू शक्ति किस को मिला करती है। मैंने जगदम्बा पार्वती का उदाहरण देकर समझाया था। पार्वती जी ने महादेव जी से प्रश्न किया था–

केन मार्गेण भो स्वामिन् देही ब्रह्ममयो भवेत्।

हे महादेव ! आप बतावें कि वह कौन सा मार्ग है जिससे जीव ब्रह्ममय हो जाता है। हे स्वामी ! 'गुरूदीक्षां प्रदेहिमें' आप मुझे गुरू–दीक्षा दें। ऐसी प्रार्थना भगवती पार्वती ने की। मैंने अपने व्याख्यानों में यह बात कई बार बतलाई है कि पति और पत्नी का क्या सम्बन्ध होता है। पत्नी शक्ति का जितना आकर्षण कर सकती है उतना अन्य कोई नहीं कर सकता। क्योंकि वह स्वयं शक्तिस्वरूपा होती है। इसलिए वह अर्धांगिनी कहलाती है। पति के वामाङ्ग में रहने वाली वह अपने पति की शक्ति को आकर्षित करती रहती है। बशर्ते वह पति परायण हो। इस बात को हमने भी अपने योग प्रचार कार्यक्रमों में देखा है। कई स्थानों पर कई हमने बच्चों को योग दीक्षा दी। उनका अच्छा ध्यान चलने लगा। उन्हीं ध्यानी पतियों के सम्पर्क में रहने के कारण पत्नियों को भी घर बैठे–बैठे वही अनुभूतियाँ होने लगीं जो उनके पति ध्यान में देखा करते थे। यह इसलिये हुआ क्योंकि उनका सम्बन्ध इसी प्रकार का होता है जिससे वे शक्ति को खींचती रहती हैं। भगवान महादेव के वामाङ्ग में रहने वाली जगदम्बा पार्वती अपने पति से कहती हैं:– 'मुझे गुरूदीक्षा दे दो। इसका मतलब यह हुआ कि गुरू जो शक्ति दे सकते हैं वह उसे पत्नी होकर भी आकर्षित नहीं कर सकती।

योग दर्शन में सूत्र आता है :– **'समाधिसिद्धीरश्वर प्राणिधानात' ईश्वर प्राणिधानात् भक्ति विशेषात् आवर्जितः अभिमुखी कृतः ईश्वरः तमनुगृहाति अभिध्यानमात्रेण इदमस्याभिमतमस्तु।**

अर्थात् भक्ति विशेष से आकृष्ट किया हुआ ईश्वर अपने संकल्प से भक्त के अभिमत वस्तु को दे दिया करते हैं। ईश्वर का ऐसा संकल्प हो जाने पर उसकी समाधि हो जाया करती है। यह ईश्वर के संकल्प का फल रहा। लोग आनन्दकन्द श्री प्रभु जी से प्रश्न पूछा करते थे–प्रभुजी ! अमुक व्यक्ति आप के चरण शरण में है क्या उसका यह दुःख दूर हो जायेगा ? श्री प्रभुजी इसका एक उत्तर दिया करते थे– हाँ ! उसके यहाँ रहने से उससे कोई ऐसी घटना बन जायेगी, कोई न कोई हरकत ऐसी बन जायेगी जिससे उनका (प्रभुजी का) हृदय

प्रसन्न हो जायेगा। इस प्रसन्नता से ही उनके दुःख द्वन्द्व दूर हो जायेंगे। पता नहीं कितनों के ही दुःख ताप इसी प्रकार से दूर हो गये। भजन गाने वाले गाया करते हैं–'न जाने कौन से गुण पर दयालु रीझ जाते हैं।' ईश्वर का जहाँ संकल्प बन गया वहाँ समाधि हो गई। तुम जानते हो समाधि का अर्थ क्या होता है ? समाधि के भेद का विवेचन करते हुये तुम्हें मैं बार–बार समझाया करता हूँ कि समाधि सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात भेद से दो प्रकार की होती है। सम्प्रज्ञात उस समाधि को कहते हैं जिसमें मनुष्य की वृत्ति अन्तर्मुखी बन जाती है। वह भीतर के दृश्यों को देखा करता है। मैंने तुम्हें अपने पिछले व्याख्यान में श्रेय और प्रेय मार्ग को समझाते हुये बतलाया था– **'तयोस्तु श्रेयः आददानः साधु भवति'।**

जो मनुष्य श्रेय मार्ग पर चलता है, उसका कल्याण हो जाता है और जो प्रेय मार्ग पर चलता है वह अपने लक्ष्य से गिर जाया करता है। मैंने तुम्हें सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात के विषय में बताया था। सम्प्रज्ञात में प्रवेश करने का अर्थ है–श्रेय का आददान। बाह्य दुनियाँ में जब हम 'आँख से किसी के रूप को देखते हैं तो आँख प्रेय मार्ग में लगा देती है। मन सोचता रहता है यह सुन्दर रूप है इसको देखूँ, इससे बातचीत करूँ। इससे उसकी प्रेय मार्ग में प्रवृत्ति बढ़ जाती है फिर इसका परिणाम वही होता है जो भगवान ने गीता में इस प्रकार कहा है :–

'ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते' एक बार वासना का चिंतन किसी बहाने से करना शुरू कर दिया, आँखों ने किसी रूप को दिखलाया, मन ने उस रूप का चिन्तन करना शुरू कर दिया। यह कैसे मिले, कैसे प्यार करें, इससे वह बँध गया। आँख ने उसे प्रवृत्ति में प्रेय मार्ग में लगा दिया। ऐसा आदमी फिर पागलों की तरह घूमता–फिरता है। मृगतृष्णा में घूमा करता है। जिस प्रकार भटकता रहता है उसका चित्त अशान्त रहता है। यह है प्रेय मार्ग का फल ! उससे मनुष्य अन्त में 'विनश्यति' की डिग्री को प्राप्त हो जाता है। मृग का मन शब्द में बँध जाता है, शिकारी बाण मार देता है, वह अपने जीवन से हाथ धो बैठता है। इसी प्रकार भौंरा सुगन्ध के चक्कर में पड़ जाता है। कमल के अन्दर बन्द हो जाता है हाथी आदि कमल को उखाड़ देते हैं। कमल बन्द ही रहता है, भौंरा अन्दर ही मर जाता है। रूप में आसक्त होकर हजारों पतंगें रोज मर जाते हैं। इन्द्रियों के विषय यदि हम बाह्य मार्ग से ग्रहण करते हैं तो वह प्रेय मार्ग है।

'ह्रियते अर्थात्, प्रेय मार्ग में मनुष्य अपने लक्ष्य से गिर जाता है। समझ लो हमारे आचार्यों का उपदेश। हमारे आचार्य बतलाते हैं किसी का स्पर्श मत करो। किसी को देखो नहीं। अपने मन में किसी के प्रति आकर्षण मत पैदा होने दो। मन में जिसका आकर्षण पैदा होगा वह तुम्हारी शक्ति को लूटता रहेगा। जिसका चिंतन करेगा वह तुम्हारी शक्ति को खींच ले जायेगा। इसलिये अपनी बहिर्मुखी वृत्ति को मत बढ़ने दो। आँख बाहर के रूप को न देखे, भीतर के दृश्यों को देखे। कान बाहर के शब्दों को न सुने, भीतर के नाद को सुने। त्वचा बाहर का स्पर्श न

करे, भीतर के दिव्य स्पर्शों का अनुभव करे। इस प्रकार से जो प्रेय मार्ग को पकड़ता है, वह कल्याण पथ से गिर जाता है और श्रेय मार्ग पर चलने वाला कल्याण भाजन हो जाता है।

ईश्वर के मन में आया **'इदमस्याभिमतमस्तु'** इसकी अभीष्ट वस्तु समाधि को प्राप्त हो जाये। संकल्प से उसकी समाधि हो जाती है। नरसी मेहता को इसी प्रकार से समाधि हुई थी। तुलसी दास को भी इसी प्रकार ईश्वर के संकल्प से समाधि हुई थी। शक्तिवान का संकल्प–उनके अन्दर शुभ भावनाओं का आना ही कल्याण का कारण है। यह नहीं, हाथ जोड़कर खड़े हो जाओ। 'महाराज ! हमारा ऐसा हो जाये, वैसा हो जाये'। इसकी बजाय वह हरकत करो जो उनको प्यारी लगे। ऐसा कोई कर्म करो। जिससे उनका मन द्रवित हो जाये। उनके मन में स्वयं आ जाये इसका ऐसा हो जाना चाहिये। उनके मन के अन्दर ऐसी लहर पैदा हो जाये। उस लहर में काम अपने आप हो जाया करते हैं। तुम्हारे कहने से नहीं होगा।

जुबान से कहते रहो किन्तु बाह्य व्यवहार में चलेगी किन्तु शक्ति का आकर्षण तुम्हारे कर्म से होगा। मैंने तुम्हें जगदम्बा का उदाहरण दिया था–क्योंकि वे सारे संसार की माता हैं भगवान शिव की शक्ति का आकर्षण उनके अन्दर स्वाभाविक है। पति–पत्नी का अभेद सम्बन्ध होता है पति के अन्दर जो शक्ति है वह अपने आप पत्नी में आ जाती है। इतना होने पर भी भगवती पार्वती को कहना पड़ा–**'गुरूदीक्षां प्रदेहि मे'**। सद्‌गुरू तत्व आगे की चीज है इसलिए कहा–**'गुरूदीक्षां प्रदेहि मे'**।

इसलिये आवश्यक है शक्ति को पाने के लिये कि अपने आपको झुका लो, अहंकार को छोड़ दो। जो विनयी है, अपने को सद्‌गुरू सत्ता में लीन कर देता है उसके अन्दर शक्ति का उत्थान हुआ करता है। देखो ! जमीन में दाना वह उगता है जो अपनी सत्ता को खत्म कर देता है उससे फिर आगे हजारों दाने पैदा हो जाते हैं। मैंने बताया था कि साधक के अन्दर अभिमान नहीं होना चाहिए। अभिमान बहुत बुरी चीज है। एक आदमी सेवा करता है और सेवा का उसको अभिमान है–हमने तुम्हारी इतनी सेवा की–इतना काम कर दिया–तो सेवा का भार ही काफी मुश्किल होगा उतारना। इसलिए गुरू सेवक को अभिमान नहीं होना चाहिए। एक साधुवेश में है। अपने मन से सोचता रहता है मैं नग्नवेश में हूँ सिर पर बड़ी–बड़ी जटायें हैं। विभूति लगाई हुई है। क्यों झुकें हम ? हमें झुकने की क्या आवश्यकता है ? यह अभिमान उसके रास्ते में बहुत बड़ी दीवार है–व्यवधान है। सद्‌गुरू शक्ति का आकर्षण वह नहीं कर सकता। साधुत्व का अभिमान पड़ा हुआ है तो वह शक्ति को प्राप्त नहीं कर सकता। सेवा करके मनुष्य सेवा का मतलब यह निकाल ले कि मैंने इनकी सेवा की है जैसे मैं नचाऊँ इनको नाचना ही पड़ेगा, तो वह सेवा नहीं कर रहा है वह तो उनको बाँधने की चेष्टा कर रहा है। निजाश्रमं स्वजातिंच साधक को अपने आश्रम (सन्यासादि) तथा जाति का अभिमान छोड़कर गुरुदेव की सेवा में रहना पड़ेगा। जाति के अभिमान को मैं ब्राह्मण हूँ–हम तो बहुत बड़े भारी ठाकुर साहब हैं, सेठ जी हैं, हम क्यों सेवा करें ? यह अभिमान त्यागना होगा। 'स्वकीर्तिं' एक व्यक्ति लोक ख्याति को

प्राप्त है उसका चारों तरफ नाम है, किन्तु जिस चीज को लेने के लिए वह चलता है उससे वह खाली है। उसकी उसको जरूरत है इसलिये ख्याति को छोड़कर गुरुचरणों में आना होगा। 'तद्विद्धिप्रणिपातेन प्ररिप्रश्नेन सेवया' इस सिद्धान्त को सामने रखकर विनीत होकर आना चाहिए। जो लोग अनन्य गुरुभक्त बन जाते हैं। वह शक्ति को पा जाया करते हैं। मैं तुम्हें बतला रहा था सद्‌गुरुसत्ता इस आकृति से न्यारी चीज है। शक्ल यह होती है किन्तु करने वाले वे होते हैं। वह सत्ता दूसरी है। गीता प्रकरण में एक बार अर्जुन ने भगवान कृष्ण से कहा—प्रभो ! आपने जो गीता का ज्ञान सुनाया था वह मैं भूल गया हूँ। कृपाकर आप दोबारा सुना दें। इस पर भगवान ने कहा— अर्जुन ! यह तुमने बहुत भूल की है जो इसे भुला दिया है।

न शक्यस्तन्मया तथा वक्तुम् ह्यशेषतः।
परं हि ब्रह्म कथितम् योग युक्तेन तन्मयः।।

मैंने इसे योगयुक्त होकर कहा था। वह तो परब्रह्म की वाणी थी।

इसलिये यदि मनुष्य श्रेय साधन करना चाहता है तो उसके अन्दर गुरु भक्ति के भाव परिपूरित होने चाहिए।

गुकारस्त्वंधकारोऽस्ति रूकारस्तेज उच्यते।
अज्ञान ग्रासकं ब्रह्म गुरुरेव न संशयः।।

अर्थात् गुकार अंधकार है, रूकार तेज कहलाता है। गुरु अज्ञान ग्रासक ब्रह्म है। **'गुरोराधनं कार्यम् जीवत्वं च निवेदयेत्'**। साधक को अपने जीवत्व को भी गुरुदेव को अर्पण कर देना चाहिये। यह भी कठिनाई से होनी वाली चीज है। यह एक सिद्धान्त है—**'वृत्तिसारूप्यमितरत्र'** व्युत्थान काल में गुणवृत्ति जैसी प्रेरणा करती है व्यक्ति वैसे ही सोचता है, बात करता है, व्यवहार करता है। **'सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि'** ज्ञानी पुरुष भी अपनी प्रकृति के अनुसार चेष्टायें किया करते हैं। लौकिक व्यवहार में साधक को गुरु को सन्तुष्ट करने के लिये वस्त्रादि देने चाहिये। यह तो तुम लोग करते ही हो। किन्तु खास चीज और है गुरु को सन्तुष्ट करने वाली। गुरुदेव जो मन्त्र तुम्हें देते हैं वह स्वयं मन्त्र बनकर तुम्हारे अन्दर आते हैं। वह मन्त्र केवल अक्षरों का समूह नहीं होता, वह मन्त्र गुरु ही होते हैं। यह तुम स्वयं आजमाईश करके देख लेना। मैं तुम्हें बहकाता नहीं। इसलिये गुरुदेव जिस मन्त्र को देते हैं वह मन्त्र गुरुदेव है स्वयं। गुरुदेव के मुख से निकला हुआ मन्त्र – स्वयं गुरुदेव ही तुम्हारे अन्दर प्रवेश करते हैं। उस गुरुमन्त्र का तुम **'समकायशिरोग्रीव'** होकर मेरुदण्ड को सीधा रखकर ब्रह्ममुहूर्त में तीन घण्टे जाप करना। एक बात और है ब्रह्मचर्यपूर्वक इसका जाप करना चाहिये। यदि ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करोगे तो शक्ति निकल जायेगी। यदि शक्ति का निष्कासन हो गया तो बात नहीं बनेगी। संयम–नियमपूर्वक चालीस दिन भी एकान्त में साधना करके देख लो। गुरुदेव जो बतायें उसका जाप करो व ध्यान करो, ध्यान करो फिर जाप करो। ऐसा करके तुम देख लेना। गुरुदेव अपने आप प्रसन्न हो जायेंगे। इसमें कुछ खर्च करने की आवश्यकता नहीं। गुरु संतोष

के लिये लौकिक सेवा तो तुम लोग करते ही रहते हो किन्तु वह सेवा नहीं कर रहे हो तो तुम्हें करनी चाहिये। करते तो हो किन्तु थोड़ी कर रहे हो। यदि तुम यह चाहते हो कि गुरूदेव स्वयं ही वरदान दे दें, अपने आप ही खुश हो जायें तो तुम इस नुस्खे को आजमा कर देख लेना। तीन घण्टे जाप करो व साथ में एक घण्टा जीवन तत्व साधन करो। पता है जीवन तत्व साधन से क्या होगा ? इसके करने से शक्ति सारे शरीर में व्याप्त हो जायेगी। इसमें सभी आसनों का समुच्चय है। गुरुमंत्र को जपने से गुरुदेव अपने आप ही प्रसन्न हो जायेंगें। बाहर की चापलूसी से गुरूदेव प्रसन्न नहीं होते। एक बडे कहलाने वाले व्यक्ति की बात बताता हूँ। उनका कहना था– गुरुदेव को खुश करने में क्या है ? एक–दो उनके भाषण करा दो, उनके चेलों को खुश कर दो, गुरूजी अपने आप ही खुश हो जायेंगे। किन्तु वास्तव में ये सब गुरूदेव को खुश करने के उपाय नहीं हैं, गुरुदेव भीतर की बात को समझते हैं।

'आकारै रैंगितै गत्या चेष्टया भाषणेन च।
नेत्र वक्त्र विकारैश्च ज्ञायते अन्तर्गतं मनः।।

आकृति से, गति से, चेष्टा से, बोलचाल से मन के भाव परिलक्षित हो जाया करते हैं। आत्मज्ञान के निकट पहुँचने वाले योगी को प्रातिभज्ञान हो जाता है। उसको स्वतः ही आभासित होता रहता है कि अमुक के मन में क्या है ? तुम से उत्तम साधक भी तुम्हारे मनोभावों को जान लेंगे। इसलिए यदि गुरुदेव को वस्तुतः खुश करना चाहते हो तो मेरूदण्ड को सीधा करके अपनी ड्यूटी समझकर गुरुदेव को रिझाने के लिये ३ घण्टे जाप करना ही करना है। यदि ऐसा कर लोगे तो तुम अलभ प्राप्त कर लोगे, वह अलभ लाभ ऐसा है **'यस्मिन् ज्ञाते सर्वमिदं ज्ञातं भवति, यस्मिन् लब्धे सर्वमेव लब्धम भवति'** ऐसा यह अलौकिक लाभ है जिसके प्राप्त कर लेने पर फिर कुछ प्राप्तव्य नहीं रहता। इसी अलभ लाभ के लिये तुम इस दरबार में आये हो। तुम्हें मूलाधार में ध्यान लगाने के लिये कहा जाता है। तुम्हारा ध्यान लगने लग जाता है। षट्चक्रों के दर्शन हो रहे हैं दिव्य तेज दिखाई देने लगता है, सुषुम्ना की गति चल रही है। उसमें भी ब्रह्मनाड़ी चल रही है। असल तो ऐसी स्थिति में लौकिक कामनायें समाप्त हो जायेंगी, कोई थोड़ी बहुत कामना आई भी, कोई प्रबल संस्कार हो तो–**यं यं चिन्तयते कामं तं तमाप्नोति निश्चितम्'** वाली बात हो जाती है। ऐसी स्थिति बन जाने के बाद अन्तरानुभूति प्रारम्भ होने के बाद जो–जो कामनायें आयेंगी वे सब अपने आप पूर्ण होती चली जायेंगी। यदि तुम चाहते हो कि दुनियाँ में तुम्हें यश मिले, मान–बड़ाई मिले, बीमारियाँ दूर हों, तुम्हारे बच्चे स्वस्थ हो जायें तो इसके लिये ध्यान योग ही सबसे बड़ा नुस्खा है। वैसे कामना से गुरूदेव का चिन्तन नहीं करना चाहिये। जो साधन बतलाया गया है उसे करोगे तो अपने आप ही मन में शक्ति आ जायेगी। इसलिये गुरूदेव का ध्यान करना, मंत्र का जाप करना गुरूदेव को रिझाने का एक बहुत बड़ा साधन है।

कर्मणा मनसा वाचा सिद्धिराराध्यो गुरूः।
दीर्घदण्डो नमस्कृत्य निर्लज्जौ गुरूसंनिधी।।

मन, वचन व कर्म से गुरूदेव की आराधना करनी चाहिये। गुरूदेव को दण्ड के समान लम्बा–लम्बा पड़कर प्रणाम करना चाहिए। प्राचीन काल में तो पिता का नाम साथ लेकर प्रणाम करने का रिवाज था अब यह रिवाज नहीं है। शिष्य को यह नहीं सोचना चाहिये 'कि भाई ! हम इस प्रकार प्रणाम करेंगे तो हमारी इज्जत चली जायेगी। मेरे मित्र क्या सोचेंगे आदि–आदि।

शरीरमर्थसम्प्राप्तिं सद्गुरूभ्योनिवेदयेत।
कृमि विड्भस्म विष्ठान्तं दुर्गन्धमन मूत्रकम्।।

गुरूदेव के चरण कमलों में जिनका शरीर लग जाये, धन–सम्पत्ति लग जाये अच्छा है, श्रेय मार्ग है। क्यों ? यह शरीर कीड़े, मलमूत्र, कफ, रक्त, माँस आदि से भरा हुआ रहता है। ऐसा शरीर यदि गुरूदेव की सेवा में लग जाये बहुत ही अच्छी बात है–ऐसे शरीर के द्वारा उस परम तत्व की सेवा हो जाये तो बहुत बडी बात है। वह आदमी बहुत चतुर है, उस तत्व की आराधना में अपने मल मूत्र भरे शरीर को लगाये रखता है। जो ज्यादा देहाभिमानी रहते हैं, शरीर के अभिमान में घूमा करते हैं–हम ऐसे बाबूजी, हम ऐसे बाबूजी,–ऐसे लोगों को देहाभिमान के कारण उस तत्व का अभिमान नहीं रखना चाहिये। वहाँ झुकाव रहना चाहिये। यदि कोई अभिमान है तो उसकी सेवा को अपने साथ ही ले जाता है। उसका कोई फल नहीं रहता।

श्रीगुरूवर्यचरण द्वन्द्वम् यस्यां दिशि विराजते।
तस्यै दिशे नमस्कुर्यात् भक्त्या प्रतिदिनं प्रिये।।

अर्थात् गुरूदेव जी जिस दिशा में विराजते हैं उस दिशा को प्रतिदिन प्रणाम करना चाहिये। गुरूदेव के चरणों में तो नमन करना ही करना चाहिए।

गुरूपाद प्रसादेन ज्ञानमुत्पद्यते स्वयम्।
यनोद्धतृमिदं विश्वं तस्मै श्री गुरवे नमः।।

गुरूदेव की चरण–कृपा से ज्ञान अपने आप उत्पन्न हो जाता है, पैदा करने की आवश्यकता नही रहती। साधक तो केवल गुरूदेव की आज्ञा का पालन करे। गुरूदेव तीन घण्टे बैठने की आज्ञा देते हैं। बस ! इसी आज्ञा का पालन करना चाहिये। ऐसा करने से ज्ञान स्वयं ही उत्पन्न हो जाता है।

मन्नार्थास्त्रजगन्नाथो मद्गुरूस्त्रिजगतगुरूः।
ममात्मासर्वभूतात्मा तस्मै श्री गुरवे नमः।।

खास बात भगवान सदाशिव ने और बतलाई है। साधक को अपने मन में यह भावना रखनी

चाहिये कि मेरे गुरुदेव जिनका मैं ध्यान करता हूँ–मेरे जो इष्ट हैं वे सारे जगत के नाथ हैं। मेरे गुरु सारे संसार के गुरु हैं। मेरी आत्मा प्राणिमात्र की आत्मा है। मुझे एक बात याद आ गई। एक बार मैं श्रीवृन्दावन गया हुआ था। वहाँ पर एक महात्मा जी से बातचीत हो रही थी। प्रसंग में श्री प्रभु जी का भी जिक्र आया। वह कहने लगा–हाँ भई ठीक है। शास्त्र का भी लेख है 'आचार्यम् मां विजानीयात्'। भगवान श्री कृष्ण कहते हैं। आचार्य को मेरा रूप जानो। मुझे यह बात सुनकर थोड़ी हँसी आ गई। वे कहने लगे–क्यों हँस रहे हो तुम ? मैंने कहा–'विजानीयात्' तो वहाँ होगा जहाँ हो नहीं, असलियत न हो और साधक अपनी भावना से मान ले कि ये भगवान है। कल्याण उस भावना से भी होगा। किन्तु जहाँ स्वयं (भगवान) हों वहाँ क्या 'विजानीयात' वहाँ तो हैं ही हैं। तुम यदि मानो कि ईश्वर नहीं है–अपनी जुबान से कह दें कि ईश्वर नहीं है ? उनकी सत्ता तो रहेगी ही रहेगी। इसलिये **'विजानीयात्'** तो साधारण गुरुओं के लिये है। किन्तु जहाँ स्वयं ही है, वहाँ 'विजानीयात्' की आवश्यकता नहीं। कोई समझ ले कि प्रभु जी नहीं हैं तो क्या उनके समझने से वे नहीं है ? वे तो नैपालधाम में बैठे ही हैं। तुम 'विजानीयात्' कहो या न कहो वे तो जो हैं रहेंगे ही रहेंगे। उनकी सत्ता को कोई हटा नहीं सकता।

ध्यान मूलं गुरोर्मूर्ति, पूजामूलं गुरोः पदम्।
मंत्र मूलम् गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा।।

किसी का ध्यान न लगता हो गुरुदेव का ध्यान करें अपने आप ध्यान लगने लग जायेगा। गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है–

श्रीगुरुपद नखमणिगण ज्योति,
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती
दलन मोह तम सोसू प्रकासू,
बड़े भाग्य उर आवई जासू।।

ये शब्द गोस्वामी जी ने साधारण आदमी के लिये थोड़ी लिखे हैं, यह तो उन्हीं के लिए लिखे हैं जो वैसे हुआ करते हैं। यदि अपने हृदय में दिव्य दृष्टि पैदा करना चाहो तो गोस्वामी जी ने एक नुस्खा लिखा है–गुरुदेव के चरण–कमलों के जो नाखून हैं उन नाखुनों से जो चमक निकल रही है–बैठकर के उनका चिंतन करने से दिव्य दृष्टि मिलती है। उसका फल निकलता है कि मनुष्य के मोह का नाश हो जाता है। वह मनुष्य बड़ा भाग्यशाली होता है। जिसके हृदय में गुरुदेव का चरण कमल आ जाये। गुरुदेव के चरण कमलों का पूजन करने से दुनियाँ में सबका पूजन हो जाता है। **'मन्त्र मूलं गुरोर्वाक्यम्'** जो कुछ गुरुदेव कह दें वही मन्त्र है। हमने तुम्हें कई बार बताया है नैपाल में वहाँ पहाड़ में रहने वाले लोग चिन्चिडिंग–चिन्चिडिंग का उच्चारण कर रहे थे। गुरुदेव यदि कह दें कि तुम ईंट–ईंट का जाप करो। यदि गुरुदेव

के चरणों में प्रेम है तो ईंट ही मन्त्र बन जायेगा। गुरूदेव कह दें घूँ–घूँ का जाप करो तो घूँ–घूँ के जाप से ही ध्यान लग जायेगा। गुरूदेव के मुख से जो भी निकले वही मन्त्र है। कई बार लोगों को इस प्रकार उत्कृष्ट भावना से अलौकिक फल मिला है। **'मोक्षमूलं गुरोः कृपा'** यदि गुरूदेव का कृपा–प्रवाह बराबर चल रहा है तो मुक्ति में कोई शंका नहीं। शुभ गति होगी ही होगी।

गुरोःकृपा प्रसादेन ब्रह्मविष्णु महेश्वराः।
सामर्थ्य तत्प्रसादेन केवलं गुरूसेवया।।

ब्रह्म, विष्णु, शिव भी गुरू की कृपा से सामर्थ्य वाले हैं।

मदाहंकार गर्वेण तपोविद्याबलाधिकाः

जो तप का अहंकार, बल का अहंकार, विद्या का अहंकार अथवा किसी भी अहंकार के कारण गुरूदेव से विमुख रहते हैं वे चाहें देव, गन्धर्व, किन्नर ऋषि हो तो भी मुक्त नहीं होते।

एवं श्रुत्वा महादेवि गुरूनिन्दां करोतियः।
स याति नरकं घोरं याच्चन्द्र दिवाकरौ।

हे देवि ! गुरूदेव की इतनी महिमा सुनकर जो गुरू–निन्दा में लगे रहते हैं, वह बहुत अशुभ गति को प्राप्त होते हैं।

'यावत् कल्पांतको देहः तावत् देवि गुरूं स्मरेत्'

जीवन के अन्तिम क्षण तक गुरू का स्मरण करें। यदि आजादी चाहते हो तो गुरूदेव का कभी लोप न करें।

'गुरोरग्रे न वक्तव्यं असत्यं च कदाचन'

गुरूदेव के सामने 'हूँ' ऐसा अहंकार से नहीं बोलना चाहिए और कभी झूठ भी नहीं बोलना चाहिए।

गुरूं हुंकृत्य त्वङ्कृत्य गुरूं निर्जित्य वादतः।
अरण्ये निर्जले देशे संभवेद् ब्रह्मराक्षसः।।

गुरूदेव को 'हूँ', 'तुम' बोलकर तथा बहस करके जीते, वह निर्जन स्थान में ब्रह्म राक्षस हो जाता है। उस राक्षस का मुख सुई जैसा होता है और पेट बहुत बड़ा होता है। पानी से उसकी तृप्ति नहीं होती। इसलिए गुरूदेव के साथ हमेशा आदर से बोलना चाहिये।

सर्वे भवन्तु सुखिनः
सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु
मा कश्चिद् दुःख भाग् भवेत्।

* * *

महायोग विद्या मार्ग

आचार्य (डा०) दासलाल ब्रह्मचारी

प्रत्येक योग साधक की यह प्रथम जिज्ञासा होती है कि उसके अन्तःकरण को निर्मलता प्राप्त हो और चित्त प्रफुल्लित रहे। निर्मल चित्त ही प्रफुल्लित रह सकता है। जिस चित्त में निर्मलता का अभाव है वह चित्त अपने शाश्वत आनन्द को खोकर, राग–द्वेष, निन्दा–चुगली आदि अवगुणों के मल में निरन्तर सनता चला जाता है। किन्तु जीव का आत्मा तो परम पवित्र है वह परमात्मा के परम् तेज का एक अंश है जो सदा एक स्वरूप में रहने वाला तथा सुख–दुःख की अनुभूति से सदा रहित है। सदा आनन्द स्वरूप है जिसके प्रकाश से प्रकाशवान होकर जो जीवात्मा सदा परमात्म आनन्द में गोते लगाया करता था वह अब आज के युग में सांसारिक विषय सुख की इच्छा पूर्ति के कारण इतना मलयुक्त हो गया है कि क्षण भर की परम शान्ति और परम सुख के लिए भी, अत्यन्त दीन होकर मिथ्या गुरुओं की शरण में भटकता फिरता है।

ऐसे व्याकुल प्राणी को जब कोई कह देता है कि तुमको केवल योग मार्ग ही परम सुख प्रदान कर सकता है इसी मार्ग का अवलम्ब लेकर आज तक के सभी महान संत विश्व में अपना नाम सदा–सदा के लिए अमर कर गये हैं। इस प्रकार की अनेक प्रेरणाऐं पाकर, त्रितापों की भीषण ज्वालाओं से मुक्ति पाने हेतु तथा सद्गुरु के सानिध्य की शीतलता का आनन्द प्राप्त करने की प्रबलाकांक्षा से साधकगण तुरन्त योगमार्ग की ओर आकृष्ट हो जाते हैं जो अपने आप में एक बहुत अच्छी बात है। कोई यदि आज के युग में योग मार्ग का जिज्ञासु बन जाता है तो उसके कहने ही क्या ? किन्तु योग मार्ग के प्रथम सम्पर्क में ही योग विद्या की उच्च स्तरीय भूमिकाओं अर्थात शीर्षस्थ सीढ़ियों पर छलांग लगा कर पहुँचने का निर्णय यदि कोई लेता है तो यह उस साधक के हित में कदापि नहीं होगा। अपने मनमाने ढंग से गुरु–गुरु चिल्लाकर और अनेकानेक प्रकार के कर्मकाण्डों से भोले लोगों को प्रभावित करके जो स्वयं को योग की उच्च स्थितियों में दिखलाने का मिथ्या प्रयास करते हैं उनको बाद में बहुत पछताना पड़ता है। योग तो परम पवित्र विद्या है। यह नकदधर्मी है। इधर निर्मलचित्त बनो, उधर योगनिधि प्राप्त करो। जैसे–जैसे साधकगण निर्मलचित्त होते जाते हैं, वैसे ही योग मार्ग की सीढ़ियों पर उत्तरोत्तर चढ़ते जाते हैं।

क्रोध क्या है ? यह अविद्या का विषाक्त रस है जो साधक की पुण्य शक्ति का नाश करता है। और पतनगामी बना देता है। कामनाओं की पूर्ति न होने पर चित्त में क्रोध का विकार तुरन्त उत्पन्न हो ही जाता है। कामनाओं के पुण्य रजोगुणी चित्त के उद्यान में फलते–फूलते हैं।

लोगों की दृष्टि में कोई भी साधक कितना भी आगे क्यों न बढ़ जाये किन्तु यदि वह क्रोध के अधीन रहता है तो स्पष्ट है कि अभी उसके चित्त में निर्मलता नही है। तुच्छ बातों को लेकर अथवा मान-सम्मान की कामना की पूर्ति में विघ्न देकर किसी व्यक्ति पर कोई साधक यदि क्रोध कर देता है तो वह तुरन्त शक्ति से खाली हो जाता है। काम तथा लोभ भी ऐसा ही फल देते हैं अतः काम, क्रोध और लोभ को नरक के द्वार कहा गया है। सिद्धपीठ अथवा गुरु स्थानों पर भी कोई अपने क्रोध को नियन्त्रण में नहीं रख पाता है तो इसका अर्थ है कि उसमें रजोगुण मल की प्रधानता है। इसी प्रकार यदि आलस्य-प्रमाद किसी साधक को अत्यधिक सता रहा है तो समझना चाहिए कि उसमें तमोगुण का मल विशेष रूप से व्याप्त है। रज और तम ये दो भयंकर मल साधक की साधना में विशेष विघ्नकारी हैं। मल स्वरूप तो सतोगुण भी है किन्तु वह साधक को योग की उच्च कक्षाओं में पहुँचाने में सहयोग करता है अतः चित्त में सतोगुण का निर्माण करना अति आवश्यक होता है। बाद में परमोत्कृष्ट स्थिति के साधकों को कैवल्य हेतु सतोगुण भी त्यागना होता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि साधक को रज व तम दोनों ही मलों को अपने चित्त से हमेशा के लिए धो देना चाहिए। कलिकाल में सतोगुण गौण स्थिति में पहुँच गया है। हर चित्त में रज और तम का ही बोलबाला है। तब निर्मलता चित्त को कैसे प्राप्त हो ? जिसकी सहायता से साधक को योग विद्या का निर्विघ्न पथ प्राप्त हो सके।

इसके उत्तर में योगेश्वर श्री कृष्ण चन्द्र भगवान ने महात्मा अर्जुन को उपदेश किया कि हे अर्जुन ! सुनो--

यज्ञ दान तपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।।

अर्थात्--यज्ञ, दान और तपरूप कर्म त्याग करने योग्य नहीं हैं। बल्कि वह तो आवश्यक कर्तव्य कर्म है। यज्ञ, दान और तप ये तीनों ही कर्म बुद्धिमान पुरुषों को पवित्र करने वाले हैं।

स्पष्ट है कि अन्तःकरण की निर्मलता हेतु यज्ञ, दान और तप रूप कर्म विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। किन्तु उपरोक्त प्रकार के तीनों आवश्यक कर्म केवल निर्मल (सात्विक) बुद्धि के द्वारा ही सम्पन्न किये जा सकते हैं। कारण सात्विक बुद्धि यथार्थ को समझने वाली होती है। सात्विक बुद्धि के सम्बन्ध में भगवान कहते हैं--

प्रवृतिं च निवृतिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्विकी।।

अर्थात्--हे पार्थ ! जो बुद्धि प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्ति मार्ग को कर्तव्य और अकर्तव्य को भय और अभय को तथा बन्धन और मोक्ष को यथार्थ जानती है--वह बुद्धि सात्विकी है।

इसके विपरीत मलिन बुद्धि वाले अज्ञानी यथार्थ को नहीं समझते। अविद्या के वशीभूत रहने

के कारण उनके धार्मिक कार्य भी अहितकारी ही सिद्ध होते हैं। मलिन बुद्धि के विषय में योगेश्वर श्री कृष्ण भगवान अर्जुन से कहते हैं–

तत्रैव सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः।
पश्यत्यकृत बुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः।।

अर्थात्–परन्तु ऐसा होने पर भी जो मनुष्य अशुद्ध बुद्धि होने के कारण उस विषय में यानि कर्मों के होने में केवल शुद्ध स्वरूप आत्मा को कर्त्ता समझता है वह मलिन बुद्धि वाला अज्ञानी यथार्थ नहीं समझता है।

रज और तम से रहित निर्मल बुद्धि जब तक मनुष्य को प्राप्त नहीं होती है तब तक वह यज्ञ, दान और तप रूप कर्मों को बुद्धि की अज्ञानता के कारण धर्मानुकूल नहीं बना सकेगा। वह मनमुखी होकर यदि इन पवित्रता देने वाले कर्मों को करेगा भी तो बजाय लाभ के केवल हानि ही प्राप्त करेगा।

यज्ञ, दान और तप के द्वारा अन्तःकरण को शुद्ध बनाने से पहले बुद्धि को भी निर्मल (सात्विक) कर लिया जाय तो यह साधक के लिए अति उत्तम होगा। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि निर्मल बुद्धि हमारे लिए उपयुक्त गाइड के रूप में होती है जो हमें योग मार्ग पर आरूढ़ रख कर सफलता प्रदान कराने के लिए उचित ढंग से निर्देशित् करती है। निर्मल बुद्धि को प्राप्त करने वाले बड़े ही सरल ढंग से अन्तःकरण को शुद्ध करने वाले कर्मों को भली भाँति धर्मानुकूल बना कर सम्पन्न कर लेते हैं।

तब निर्मल बुद्धि कैसे प्राप्त की जाय ? इस समस्या के समाधान के अन्तर्गत अनेकानेक शास्त्र सम्मत उपाय हैं जिनमें सत्संग और सद्ग्रन्थों का नियमित पठन–पाठन अर्थात् स्वाध्याय प्रमुख है। सत्संग (महापुरुषों का संग) तो हम लोगों ने अखण्ड मण्डलाकार श्री महाप्रभुजी व श्री कृष्ण स्वरूप पूज्य गुरुदेव जी का प्राप्त कर ही लिया है। इतना पवित्र सत्संग हमको प्राप्त हुआ है। यह अत्यन्त दुर्लभ उपलब्धि है। रही बात स्वाध्याय की इसके लिए गुरुमंत्र जप ही सर्वश्रेष्ठ साधन है किन्तु रज और तम के वशीभूत चित्त के शुद्ध न रहने से साधारण जनमानस का जीभ से नियमित गुरुमंत्र जप करने में भी मन नहीं लगता। रजोगुण के कारण अनेक चिन्ताओं के रहते गृहस्थों के लिए यह सम्भव नहीं हो पाता। दूसरे तमोगुण इतना आलस्य प्रमाद देता है कि मन्त्रजप शुरू करते ही निद्रा अपने स्नेहपाश में भर लेती है। ऐसी स्थिति में ध्यान की तो कल्पना करना ही व्यर्थ है।

योग मार्ग में सर्वोत्कृष्ट सफलता तो गुरुमंत्र जप और ध्यान योग के द्वारा ही प्राप्त होगी; किन्तु निर्मल बुद्धि प्राप्त करने हेतु उक्त दोनों विषयों में हमारा अत्यधिक मन लग सके इसके लिए सबसे सरल साधन यह है साधक योग साहित्य का नियमित अध्ययन और मनन करें। ऐसा करना हम सभी के लिए परम हितकारी है। इस घोर कलिकाल में प्रत्येक व्यक्ति का

अन्तःकरण रज व तम के दुष्प्रभाव से सुरक्षित नहीं है। पूर्ण सतोगुण से चमकते हुए एकाग्रता के धनी संयमनिष्ठ संसार सिंह जैसे कुछ बिरले ही गुरुभाई परम पूज्य गुरुदेव की शरण में आये जो तत्काल उनका परम आशीर्वाद प्रसाद पाकर तुरन्त अपने परम लक्ष्य की ओर बढ़ गये। योग की उत्कृष्ट उपलब्धियों की ओर दृष्टि करने से पहले हम यह देखें कि हमारी स्थिति क्या है ? हम कहाँ पर खड़े हैं ? तब अधिकांश लोग पायेंगे कि वे अभी योग मार्ग के प्रवेश द्वार पर ही भटक रहे हैं।

परम पूज्य गुरुदेव भगवान अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक अपने समस्त शिष्य समुदाय को गुरुमंत्र जप और ध्यानयोग की महिमा को समझाते रहे और हम लोग प्रबल ध्यानाभ्यासी हों इस बात पर निरन्तर बल देते रहे, किन्तु फिर भी उन्होंने श्री सिद्धयोग पत्रिका की आवश्यकता को महसूस किया और इसके प्रकाशन का विचार बनाया। इसका मूल कारण योग सिद्धान्तों के प्रति हमारे मन का एकाग्रचित्त होकर पूर्ण श्रद्धा व रुचि के साथ आकृष्ट न होना ही था। उन्होंने अपने मनमुखी बालकों की विकृत चित्तवृत्तियों को देखकर ही सिद्धयोग पत्रिका जैसा सरल उपाय हमारे समक्ष रखा। साधकों को योगमार्ग के अनेकानेक विघ्नों से बचाते हुए उन्हें योगमार्ग पर सफलता पूर्वक गतिमान रखना, समस्त योग सिद्धान्तों को अधिकारी साधकों के मानस क्षेत्र तक पहुँचाना और भ्रमित, विचलित, मनमुखी साधकों को पुनः योग मार्ग से जोड़ना ही इस पत्रिका का प्रमुख लक्ष्य रहा है।

सिद्धयोग परम्परा, योग–विद्या प्राप्ति का वह मार्ग है, जिसमें श्री गुरुदेव की सिद्धकृपा से साधकों में तत्क्षण शक्तियों का उदय होता है और वह योग की उच्चतम स्थिति को अनायास ही पा जाता है। इस प्रकार की कृपा को प्राप्त करने के लिए मनुष्य का अन्तःकरण शुद्ध होना एवं प्रबल पुण्य राशि का होना अति आवश्यक होता है। अतः सभी साधकों को पूरे मनोयोग से स्वयं शुद्धि के उत्तरोत्तर प्रयास अनवरत जारी रखने चाहिये। ताकि योग मार्ग की उसकी यात्रा सुगम हो सके।

❋ ❋ ❋

लोग कहते हैं ''पहले योग्य बनो, फिर इच्छा करो।'' वेदान्त कहता है ''पहले योग्य बनो, इच्छा करने की कोई आवश्यकता नहीं।'' जो पत्थर दीवार में लगाये जाने योग्य है, वह रास्ते में पड़ा हुआ कभी नहीं मिल सकता। यदि तुम परमात्मा के अटल नियम द्वारा अपने में योग्यता उत्पन्न करोगे तो प्रत्येक वस्तु आप से आप तुम्हारी ओर चली आवेगी। जलता हुआ लैम्प पतंगों को बुलाने नहीं जाता, पतंगे स्वयं लैम्प के चारों ओर इकट्ठे होते हैं।

ईश्वर के लिए व्याकुलता

भगवान् के लिए पागल हो जाओ

अगर तुम्हें पागल ही बनना है तो संसार के विषयों के लिए पागल न बन ईश्वर के लिए पागल बनो।

लड़का न होने पर लोग आँसुओं की धारा बहाते हैं, धन-सम्पत्ति नहीं मिली तो कितनी हाय-हाय करते हैं, परन्तु भगवान् के दर्शन नहीं हुए कहकर कितने जन व्याकुल होकर रोते हैं ? जो सचमुच भगवान् को चाहता है वह उन्हें अवश्य पाता है।

जो भगवान् के लिए व्याकुल होता है वह खाने-पीने जैसी तुच्छ बातों की चिन्ता नहीं कर सकता।

जिसे प्यास लगी है, वह क्या गंगाजल को गँदला कहकर स्वच्छ पानी के लिए कुआँ खोदता है ? जिसे धर्म की तृष्णा नहीं लगी है वही 'यह धर्म ठीक नहीं' 'वह धर्म ठीक नहीं' कहते हुँ बकवाद करता फिरता है। यथार्थ तृष्णा होने पर ये सब विचार नहीं उठते।

यथार्थ व्याकुलता का स्वरूप

कृपण व्यक्ति जिस प्रकार सोने-चाँदी के लिए व्याकुल होता है, भगवान् के लिए उसी प्रकार व्याकुल होओ।

भगवान् को पाने के लिए ऐसा व्याकुल होना चाहिए जैसे डूबता हुआ आदमी साँस लेने के लिए होता है।

भगवान् को प्राप्त करने के लिए किस प्रकार की व्याकुलता चाहिए, जानते हो ? सिर में घाव हो जाने पर कुत्ता जिस प्रकार बेचैन दौड़ता फिरता है, भगवान के लिए भी उसी प्रकार की छटपटाहट चाहिए।

"हे मन, श्यामा माँ को एक बार ठीक-ठीक आन्तरिकता के साथ पुकार, देखें तो सही वह आए बिना कैसे रह सकती है ?" ठीक-ठीक हृदय से पुकारा जाए तो भगवान् दर्शन दिए बिना नहीं रह सकते।

भगवान् के प्रति किस प्रकार का आकर्षण होना चाहिए ? सती का पति की ओर, कृपण का धन की ओर तथा विषयी का विषय की ओर जो आकर्षण होता है, उन तीनों को एकत्र मिलाने पर जितना आकर्षण होता है उतना यदि भगवान् के प्रति हो तो उनका लाभ होता है।

ईसा एक दिन समुद्र के किनारे घूम रहे थे। एक भक्त ने आकर उनसे पूछा, "प्रभो, ईश्वर

को कैसे पाया जा सकता है ?'' ईसा ने उसी समय उसे पानी में ले जाकर डुबो रखा। थोड़ी देर बाद उसे हाथ पकड़कर उठाते हुए पूछा, ''अभी तुम्हारी हालत कैसी हो रही थी ?'' भक्त ने उत्तर दिया, ''प्राण अब गए तब गए हो रहे थे—बेचैन हो गया था।'' तब ईसा ने कहा, ''जब भगवान् के लिए तुम्हारे प्राण इसी तरह व्याकुल होंगे तभी उनके दर्शन होंगे।''

'इसी जन्म में ईश्वर को प्राप्त करूँगा। तीन दिन में प्राप्त करूँगा। एक ही बार उनका नाम लेकर उन्हें प्राप्त कर लूँगा।' इस प्रकार की तीव्र भक्ति होनी चाहिए। तभी भगवत्प्राप्ति होती है। 'हो रहा है, हो जाएगा' इस प्रकार मन्द भक्ति ठीक नहीं।

'इस जन्म में न हो, अगले जन्म में भगवान् को पाऊँगा' यह कैसी बात है ! ऐसा ढीलाढाला सुस्त भाव नहीं रखना चाहिए। 'उनकी कृपा से उन्हें इसी जन्म में प्राप्त करूँगा, इसी क्षण प्राप्त करूँगा'—मन में इस तरह का जोर रखना चाहिए, विश्वास रखना चाहिए। इसके बिना नहीं होता। गाँवों में किसान लोग बैल खरीदने जाकर पहले बैल की पूँछ में हाथ लगाते हैं। कुछ बैल ऐसे होते हैं जो पूँछ में हाथ लगाने पर कोई विरोध नहीं करते, बल्कि अंग फैलाकर लोटने लग जाते हैं। ऐसा देखते ही किसान लोग समझ जाते हैं कि ये बैल किसी काम के नहीं। और पूँछ में हाथ लगाते ही जो बैल तिलमिलाकर एकदम उछलने लगते हैं उन्हें देखकर वे समझ जाते हैं कि ये खूब काम में आएँगे। इन्हीं में से वे बैल पसन्द कर खरीद ले जाते हैं। ढीलाढाला भाव अच्छा नहीं। अपने में जोर लाकर, विश्वास के साथ कहो—'उन्हें जरूर पाऊँगा, अभी इसी क्षण पाऊँगा !' तभी तो यह सम्भव होगा।

भगवत्प्राप्ति की अनिवार्य शर्तें

मायापाश से मुक्त होने के लिए हमें किस उपाय का अवलम्बन करना चाहिए ? मायापाश से छुटकारा पाने के लिए जो व्याकुल होता है, उसे स्वयं भगवान् ही उपाय बता देते हैं। इसलिए व्याकुलता ही आवश्यक है।

किसी भक्त ने श्रीरामकृष्ण से पूछा, ''किस उपाय से ईश्वर के दर्शन हों ?'' श्रीरामकृष्ण ने उत्तर दिया—''क्या तुम उनके लिए व्याकुल होकर रो सकते हो ? लोग बाल—बच्चे, औरत, रुपए—पैसे के लिए लोटा—लोटा भर आँसू बहाते हैं, पर भगवान् के लिए कौन रोता है ? बच्चा जब तक चुसनी में भूला रहता है तब तक माँ रसोई या घर के अन्य कामकाज में लगी रहती है। पर जब बच्चे को चुसनी अच्छी नहीं लगती और उसे फेंककर वह माँ के लिए चिल्लाकर रोने लगता है, तब माँ झट चूल्हे पर से हण्डी को उतारकर दौड़ती हुई आकर बच्चे को गोदी में उठा लेती है।''

जिससे तीव्र व्याकुलता हो उसे शीघ्र ही भगवान् के दर्शन होते हैं।

इस कलियुग में कोई यदि ईश्वर के लिए तीन दिन भी व्याकुल होकर रोए तो ईश्वर की कृपा से वह सिद्ध हो सकता है।

चन्दामामा सभी बच्चों के मामा है। इसी तरह भगवान भी सभी के हैं। उन्हें पुकारने का सभी को अधिकार है। जो कोई उन्हें पुकारता है वह उनके दर्शन प्राप्त कर धन्य हो जाता है। यदि तुम उन्हें पुकारो तो तुम्हें भी उनके दर्शन होंगे।

सच कहता हूँ, जो ईश्वर को चाहता है, वह उन्हें पाता है। यह सत्य है या नहीं, स्वयं परखकर देखो अधिक नहीं, सिर्फ तीन दिन ठीक–ठीक करके देखो।

जगज्जननी के पास अचल भक्ति, दृढ़ विश्वास के लिए प्रार्थना करो।

साधक का बल क्या है ? साधक ईश्वर की सन्तान है, बच्चों की तरह रोना ही उसका बल है। माँ जिस प्रकार बच्चों को रोते, मचलते देखकर उसका हठ पूरा करती है, उसी प्रकार भगवान भी साधक को व्याकुल होकर रोते देख उसकी प्रार्थना पूरी करते हैं।

एक बार किसी व्यक्ति ने श्रीरामकृष्ण से कहा, "मेरी उम्र इस समय पचपन वर्ष है। मैं चौदह साल से ईश्वर की खोज में लगा हूँ। मैंने गुरु के उपदेशों का पालन किया, सभी तीर्थक्षेत्र हो आया, अनेकों साधु–सन्तों के दर्शन किए, पर कुछ तो लाभ नहीं हुआ।" यह सुनकर श्रीरामकृष्ण बोले, "मैं तुमसे कहता हूँ, जो ईश्वर के लिए व्याकुल होता है, वह अवश्य उनके दर्शन पाता है। मेरी बात पर विश्वास रखो, धीरज धरो।"

बच्चे ने माँ से कहा, "अम्माँ, जब मुझे भूख लगे तब नींद से जगा देना।" माँ बोली, "बेटा, भूख ही तुम्हें जगा देगी।"

जिस प्रकार बच्चे पैसे या खिलौने के लिए माँ से जिद करते हुए मचलते हैं, कभी रोते और अपना जानकर उनके दर्शन पाने के लिए सरल बालक की तरह व्याकुल अन्तःकरण से रुदन करता है, ईश्वर उसे दर्शन दिए बिना नहीं रह सकते।

यात्रा–अभिनय में शुरू में जब तक लोग मृदंग, करताल आदि बजाते हुए ऊँचे स्वर में हे कृष्ण, आओ, आओ' कहकर गाते रहते हैं, तब तक कृष्ण सज–धजकर आड़ में तम्बाकू पीते और गपशप करते बैठे रहते हैं। पर जब वह सब शान्त हो जाता है और नारद–ऋषि आकर वीणा बजाते हुए प्रेमसहित कोमल स्वर से गाते हुए पुकारने लगते हैं, "हे गोविन्द ! मेरे जीवन ! मेरे प्राण !" तब कृष्ण अधिक देर नहीं ठहर सकते, व्यग्र होकर तत्क्षण मंच पर आ जाते हैं। इसी तरह, जब तक साधक 'प्रभो, दर्शन दो' 'प्रभो, दर्शन दो' कहकर जोरों से पुकारता रहता है, तब तक जानना कि प्रभु वहाँ नहीं आए हैं। जब प्रभु का आगमन होता है, तब साधक भाव से गद्गद् होकर प्रेममग्न हृदय से प्रभु का स्मरण करता है तब प्रभु भी आए बिना रह नहीं सकते।

❊ ❊ ❊

भाव-प्रसून

श्रीमती सरिता भारद्वाज
नई दिल्ली

दीन दयालु दया के सागर,
भर दो मेरी मन की गागर।
तुम हो नाथ दया के सागर,
फिर क्यों मेरी रीती गागर।
जब तुम कृपा करोगे आकर,
तब ही भर सकती है गागर।
योग सुधा के बिन्दु गिरा कर,
कुछ तो भर दो सूखी गागर।
तुम्हें बुलाया मैंने गागर,
चले गए तुम क्यों ठुकराकर।
की मैंने अति करुण पुकार,
एक बार तो मुझे निहार।
राह तुम्हारी मैं यदि पत्थर,
सूक्ष्म रूप प्रकटाओ आकर।
माना मैं अवगुण का सागर,
महाप्रभू तुम योग के सागर।
अवगुण भागें तुमको पाकर,
अब तो दर्शन दे दो आकर।
एक दोष मुझमें है नागर,
काम करूँ तुमको बिसराकर।
तुम तो नाथ क्षमा के सागर,
दर्शन दे दो सब बिसराकर।
पूर्ण सिद्ध से सतगुरु पाकर,
फिर क्यों मेरी रीती गागर।
दीन दयालु दया के सागर,
भर दो मेरी मन की गागर।
भर दो मेरी खाली गागर।

भगवान–सदाशिव

डा० विजय सिंह

सिद्धयोग के आदि प्रवर्तक परम प्रभु भगवान सदाशिव जी हैं। इस सिद्धगुफा सवाँई वालों द्वारा शक्तिपात पाकर आज योग और अभ्यन्तर की अनुभूति की पहचान पा रहे हैं। हम सिद्धगुफा सवाँई वालों का तात्पर्य उस अनादि योग परम्परा से है, जो खण्डित काल से नहीं हुआ। अबाध अनादिकाल से चलता आ रहा है।

श्री गुरुदेव भगवान की उपस्थित में किसी ध्यानी ने भगवान शंकर का एक चित्र श्री महाप्रभु रामलाल जी महाराज को दिखाते हुये पूछा–प्रभो ! परम प्रभु भगवान सदाशिव क्या यही भगवान शंकर हैं ? महाप्रभुजी ने कहा–लल्ला ! नहीं। वे शिव के भी दादा हैं। वे ऋषिरूप में हिमालय में सर्वकाल में उपस्थित हैं।

चाचा गुरुदेव श्री नरसिंह मूर्ति जी द्वारा ऋषिकेश में दिये प्रवचन के आधार को उनकी अपनी अनुभूति जनक शोध मानें तो उनका कथन था कि–एक समय तमाम ऋषि–तपस्वी साधना से समाधि प्राप्त करने के बाद भी, निर्विकल्पावस्था में हजारों वर्षों तक रहने के बाद भी उनको परिपूर्णता की तृप्ति नहीं मिली। स्वामी जी कहा करते थे कि निर्विकल्प के भी सौ स्तर हैं। कोई दूसरे पर। कोई बीस पर। ऐसे ही अपने–अपने साधना सम्वेग से हिमालयी सिद्धों ने स्वीकारा कि हम सभी अभी गहरे तृप्ति को प्राप्त नहीं हैं। ऐसा क्या किया जाये कि सम्पूर्ण आत्मिक बोध को हम सभी प्राप्त हो जायें। अति प्राचीन ऋषि ने सुझाव दिया कि–हम सभी सैंकड़ों की तादात में एक जगह एकत्र होकर विश्वेश्वर की धारणा के साथ समवेत रूप में संयम पूर्वक आवाहन करें। हो सकता है, ऐसा करने से हमारी अभीप्सा की पूर्ति हो सके। पवित्र तिथिवार निश्चित कर हिमालयी ऋषि–प्रवर उत्सवपूर्वक, उत्साहपूर्वक एकत्र होकर आराधना समवेत् रूप से करने लगे। समयान्तर से अचानक एक अनादि ज्योति स्तम्भ उनके बीच प्रकट हुआ। ऐसा होने मात्र से वे सभी परिपूर्णता के बोध को प्राप्त हो गये। अनायास उस परम ज्योति प्राकट्य से सभी निर्विकल्प समाधि के सौवें स्तर पर सहज स्थापित हो गये। कृतज्ञता ज्ञापन रूप ऋषियों ने आभार जताते हेतु दिव्य स्तुतिगान किया। आकाशवाणी हुई ज्योति ने कहा–मैं तुमलोगों की आत्मपरता से सन्तुष्ट होकर ही प्रकट हुआ हूँ। अब आप सभी का कार्य पूरा हो गया है। अतः अर्न्तध्यान होऊँगा। तब ऋषियों ने कहा–परमेश्वर ! भविष्य में साधनात्मक अवरोधों को सहज ही आप पार लगा देने हेतु कृपाकर ऋषिरूप धारण कर हम सबों के बीच अवस्थान करने की कृपा करें। एवमस्तु ! एक परम कारुणिक गौरवर्ण जटा जूट–मण्डित अपूर्व तेज युक्त ऋषि का ज्योति से प्राकट्य हुआ। सभी भूमिष्ठ दण्डवत प्रणाम कर आशीर्वाद ग्रहण करने लगे। यही आदि ऋषिप्रवर भगवान सदाशिव हैं।

विश्वेश्वर भगवान सदाशिव जी ही हमारे महाप्रभु श्री रामलाल जी के श्री गुरुदेव हैं। अपने

स्वहस्त लिखित चरित्र में श्री महाप्रभुजी ने आसाम यात्रा के विलक्षण विवरण में राजा रणजीत सिंह जो घोर तांत्रिक था वह अपनी सारी तंत्र शक्ति का प्रयोग श्रीमहाप्रभु जी एवं श्री हरिहरानन्द जी तथा मुखराम पर पूरी रात करके उन्हें खो दिया। सुबह अत्यन्त दीन भाव से महाप्रभुजी के चरणों में समय भूमिष्ठ दण्ड प्रणाम कर अपने अपराध के लिये क्षमा याचना करने लगा। श्री महाप्रभुजी ने कहा—राजन ! हम तो सामान्य ब्राह्मण हैं परिपूर्ण गुरुदेव की खोज में निकले हुये हैं। तुमने हमारा कोई अपकार अपराध नहीं किया है। हाँ ! तान्त्रिक—शक्तियों के प्रयोग-दूर्षयोग से पाप बढ़ता है। अतः अब वे मंत्र—शक्तियाँ तुम्हारे बस में नहीं रहेंगी। राजा ने सपरिवार श्री महाप्रभु रामलाल जी से योग दीक्षा ली।

राजा ने प्रातः श्री प्रभु जी के मन्तव्य को जान, उन्हें पालकी पर चढ़ाकर घनघोर जंगल में रहने वाले एक प्रसिद्ध योगी के पास जाने की व्यवस्था कर दी। वह योगी रास्ते में आकर स्वयं महाप्रभुजी को नमन करता हुआ बोला ! आप स्वयं अष्टांग सिद्ध योगी हैं। आप मेरे पास क्यों आते हो ? मैं तो एक अंगी योगी हूँ। हाँ आप नैपाल जाइये ! वहाँ स्वयं आपके परिपूर्ण गुरुदेव स्वयं आकर दर्शन देंगे और सहज ही आप अष्टांग सिद्धयोगी होंगे।

एकाकी नैपाल के ऊपरी वागमती स्रोत की ओर चलते—चलते जब थक कर एक सघन झाड़ी में महाप्रभु श्री रामलाल जी सो रहे थे, अकस्मात ! आवाज आयी। ब्राह्मण देव तुम यहाँ छुपकर बैठे हो। हम तुम्हें लेने आये हैं। यह कथन स्वयं परमप्रभु श्री सदाशिव जी ने महाप्रभु श्री रामलाल जी के प्रति कहा था। महाप्रभु जी ने अपने जीवन चरित्र में लिखा है कि—मेरे प्रभु का रूप लावण्य, तेज, करुणा पूरित आँखें ऐसी थी कि मैं देखता ही रह गया। उस समय त्राटक भाव से देखते ही रह गये। भगवान सदाशिव जी ने हाथ पकड़कर कुछ मिनट में सैंकड़ों कोस की यात्रा आकाश मार्ग से प्रभुजी को करवाई।

चूड़ाला की स्थिति प्रदान करने का आदेश

तूर्याअवस्था में लीन श्री मुल्खराज जी ने जब देवी द्रोपदी माता के परम समर्पण युक्त भजन को सुनकर श्री महाप्रभुजी (श्री रामलाल जी) से प्रार्थना की कि प्रभु ! आप इस देवी को चूड़ाला योगिनी की स्थिति कृपा कर प्रदान कर दें। श्री महाप्रभु जी देवी द्रोपदी के कर्म संस्कार देख विचार करने लगे— गागर में सागर भरने की बात मुल्खराज कर रहा है। ऐसी पात्रता तो इसमें है नहीं। तभी आकाश में सद्यः प्रकट हो भगवान सदाशिव जी ने कहा— देखो ! इसने तूर्य भाव से ऐसी प्रार्थना की है अतः सोचो मत ! इसे चूड़ाला की सम्पदा प्रदान कर दो। ऐसा कहकर भगवान सदाशिव अर्न्तध्यान हो गये।

कालिका को पाताल जाने का हुक्म देना

यह घटना प्राचीन हरिद्वार में कुम्भ मेले की है। श्रीमहाप्रभुजी (योगिराज श्री रामलाल जी) योग प्रचार कैम्प में विश्राम कर रहे प्रभु जी अपने बच्चों पर आये संकट को देख बाहर निकल

कर महायोगिनी को दण्डित करने का विचार कर ही रहे थे कि—आकाश में भगवान सदाशिव अपने कोटिश : सूर्य तेज से प्रकट हो—कालिका ! को कड़े शब्दों में डांट लगाते हुये बोले तू इन्हें पहचानती नहीं है। कलिका ने कहा—प्रभो ! यह हमारे भाई है। परन्तु पहली बार इनकी तरफ से ही हमारे शिष्या पर प्रहार हुआ। भगवान सदाशिव जी ने आदेश दिया— तुम्हें अभी तत्काल पाताल चले जाना होगा। ऐसा कहकर परम प्रभु तिरोहित हुये। महायोगिनी कालिका अपनी योगिनियों के साथ चली गयीं।

भगवान सदाशिव एवं मच्छेन्द्र नाथ

जनश्रुति में व्याप्त प्रतीकात्मक कथाओं में वर्णन है कि जिस समय भगवान शंकर पार्वती जी को अमरकथा सुना रहे थे, उस कथा के अन्तराल में पार्वती जी सो गयी परन्तु कोई सुनने के लिये हुंकार भरता रहा। कथा समाप्ति पर शिवजी ने देखा पार्वती तो सो रही हैं। फिर हुंकार कौन भरते हुये सुनकर अमर हो गया हैं। वे महामत्स्य के उदर में मच्छेन्द्रनाथ को अमर—गाथा सुनकर अमरत्व प्राप्त हो चुकने की बात जान गये। वहीं से मच्छेन्द्रनाथ को साथ लेकर हिमालय आकर उन्हें योगदीक्षित किया जिन्होंने आगे चलकर नाथ—सम्प्रदाय की स्थापना की और उनके अमर सिद्ध का कैम्प लगा हुआ था। श्री हरिहरानन्द जी उनके मित्र सुंदरगिरी बखेड़िया (श्री योगिराज कृपाकानन्द अवधूत के शिष्य) श्री महाप्रभुजी की सेवा में थे। दूसरे दिन इन ब्रह्मचारियों ने देखा की इनके कैम्प के बगल में ही महिला योगिनियों का जत्था पास ही कैम्प अपना लगाने लगा। इन लोगों ने एतराज किया कि दूर कहीं अपना कैम्प लगाओ। वैरागी सुन्दर गिरि बखाडिया की प्रकृति उग्र थी। आध्यात्म में आने से पहले डाकू थे। डांका के लूटे माल को ब्रह्मपुरी के जंगल में छिपाते समय अवधूत श्री कृपालानन्द जी की दृष्टि इन पर पडी—पूछने पर अपना सत्य—सत्य कार्य व स्वभाव इन्होंने बताया। सत्य बोलने के कारण अवधूत ने शक्तिपात कर इन्हें योगी बना दिया। अतः प्रकृतस्थ अवस्था में इनका स्वभाव उग्र था।

योगिनियाँ इन ब्रह्मचारियों के कथन की उपेक्षा करके अपने स्वतन्त्र भाव से कैम्प के खूंटे आदि गाड़ने लगीं। इस पर क्रोध में आकर बखाड़िया जी ने शक्ति संचार कर योगिनियों को मूर्छित कर दिया। यह देखकर योगिनियों की संरक्षिका ने सुन्दरगिरि पर शक्ति संचार कर स्तंभित मूर्छित कर दिया। श्री हरिहरानन्द जी ने अपने मित्र पर हुये प्रहार के प्रतिकार में महायोगिनी पर शक्ति—चालन किया। बिना उनके शक्ति स्वरूप का ठीक—ठीक जानकारी किये बिना। परिणाम स्वरूप उस महायोगिनी ने श्री हरिहरानन्द जी को भी मूर्छित कर दिया। वे इस परम्परा में हुये हैं। गोरक्षनाथ जी, भरथरीनाथ, गोपीचन्द, जालन्धरनाथ, कानियानाथ से लेकर रतनलाल गम्भीर नाथ आदि आधुनिक काल तक योगी हुये हैं।

प्रयागराज में गंगा स्नान से लौटते समय तथा गोरखपुर में गोरक्षनाथ मंदिर में संकेत रूप

से उजागर करते हुये श्री गुरुदेव भगवान जी ने बताया था कि स्वयं भगवान मच्छेन्द्रनाथ जी ही श्री महाप्रभु श्री रामलाल जी हैं। आदिनाथ भगवान सदाशिव जी जो मच्छेन्द्र रूप में गुरुदेव हैं। पुनः श्री रामलाल जी रूप में अवतरण होने पर वही परमनाथ भगवान सदाशिवजी ने नैपाल वागमति के घने जंगलों से आकाश मार्ग से श्री रामलाल जी को हिमालयी सिद्धाश्रम ले जाकर अल्पकाल में स्वरूप ज्ञान कराकर कलिकाल के जी ों को योगमार्ग पर आरुढ़ कराने हेतु भूतल पर जाने की आज्ञा दिये।

नाथ सम्प्रदाय से सम्बन्धित, चित्र, साहित्य और शिल्प के अध्ययन से भी उपरोक्त बातों की पुष्टि होती है। बड़ौदा के पास दमोई नामक नगर के एक प्राचीन मन्दिर में नाथों की मूर्तियाँ हैं। उनमें मत्स्येन्द्रनाथ के गुरुदेव आदिनाथ (भगवान सदाशिव) का जो शिल्प मूर्ति है। वह पारम्परिक शिव की मूर्ति नहीं है। क्योंकि उसमें शिव के कोई लक्षण नहीं हैं। शिल्प में कोई सिद्धपुरुष, सामान्य जनेऊ धारण किये हुये दिखाया गया है।

श्री गुरुदेव, भगवान का कथन है। लोग योग और योगियों के सामर्थ्य के बारे में ठीक–ठीक नहीं जानते। हिमालय में ऐसे ऐसे कालजयी योगी हैं। जो इस ब्राह्मी–सृष्टि प्रलय के समय इस ब्रह्माण्ड को छोड़ अन्य ब्रह्माण्डों में गमन कर जाते हैं। उनकी सामर्थ्य का पार ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव भी नहीं जानते। श्री प्रभुजी कहते तुम समझो किस परम्परा से जुड़े हुये हो। तुम्हारे रक्षक गुरुदेव तो हैं ही, महाप्रभु एवं स्वयं भगवान सदाशिव की दृष्टि तुम पर सतत् है। अपनी साधना को पूर्ण निष्ठा पूर्वक दिन प्रतिदिन बढ़ाते जाओ। निर्भय रहो, खूब गुरुमंत्र का जाप करो। दीनता योग साधकों को शोभा नहीं देता है। तुम स्वयं आत्म जाग्रत कर दूसरों के सहायक बनो। गीता में देखो अखिल लोक पावन कर्ता युग चक्र, जग चक्र, कालचक्र को चलाने वाले हमारे तुम्हारे आत्मा श्री कृष्ण ने अर्जुन को क्या आदेश दिया है–

"तस्मात् योगी भवार्जुनः"

अतः योगी बनो। इससे तुम्हारा और सम्पूर्ण संसार का भला होगा।

❋ ❋ ❋

सदाचारी कौन?

न स्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं नान्यस्य दुःखे भवति प्रहृष्टः।
दत्त्वा न पश्चात् कुरुतेऽनुतापं स कथ्यते सत्पुरुषार्थशीलः।।

–महात्मा विदुर

जो अपने सुख में प्रसन्न नहीं होता, दूसरे के दुःख के समय हर्ष नही मानता तथा दान देकर पश्चात्ताप नहीं करता, वह सत्पुरुषार्थशील अर्थात सदाचारी कहलाता है।

छोटे सिद्धों की कृपा

प्रेषक :– केशव देव उपाध्याय, काशी

परम पवित्र भारत भूमि के पूर्वांचल (उत्तर प्रदेश एवं बिहार प्रान्त) के अपने योग प्रचार कार्यक्रमों का श्रेय, आराध्यदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने परम आदरणीय गुरूभाई बाबू महेन्द्र नारायण सिंह को प्रदान किया था। बाबू महेन्द्र नारायण सिंह मिरजापुर जनपद के बरैनी "कोट पर" ग्राम के निवासी थे। अब उनका स्थूल शरीर इस नश्वर संसार में नही है। अनन्यनिष्ठ हमारे इस गुरुभाई पर आराध्यदेव एवं परम योग–योगेश्वर दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की बड़ी ही विचित्र, अलौकिक एवं अद्भुत कृपायें हुई हैं। शिरोधार्य कर, अपने जीवन में घटित होने वाली कुछ विलक्षण घटनाओं को, इनके द्वारा लिपिबद्ध कराया गया है; जिसे श्री गुरूदेव जी महाराज ने श्री सिद्धगुफा सवाँई आश्रम में मुद्रित कराया है। उस किताब का नाम "मेरी निजानुभूतिया" है एवं लेखक के स्थान पर आदरणीय भाई श्री महेन्द्र नारायण जी का नाम अंकित है।

श्री सद्गुरुदेव जी महाराज ने अनेकों बार अपने मुखारबिन्दु से यह रहस्य समझाया है कि चाँहे परिस्थिति बिल्कुल ही विपरित क्यों न हो, शिष्य को अपने श्री गुरूदेव भगवान की आज्ञाओं का उलंघन नही करना चाहिये। यही शिष्य के परम उत्थान का कारण बनता है। इस रहस्य को समझाने के लिये श्री गुरुदेव भगवान ने बतलाया है कि श्री सद्गुरू सत्ता तत्वदर्शी है। एवं प्राणी मात्र का मन प्रत्यक्ष दर्शी है। अतः प्राणीमात्र के चंचल मन को न तो अधिकार है एवं न तो बोध ही है कि वह सत्य तत्व का निरूपण कर सके। अतः साधक एवं शिष्य के परम आध्यात्मिक एवं सांसारिक परमोत्कर्ष का केवल मात्र एक ही रास्ता है कि बिना सोचे समझे अपने श्री गुरुदेव की आज्ञाओं का आँख मूंद कर अक्षरशः पालन करें। श्री गुरुदेव जी महाराज ने इस रहस्य को आगे समझाते हुये अपने मुखारबिन्दु से, यह भी समझाया है कि जब साधक के विपरित संस्कार भुगतान में आते हैं तो वे श्री गुरू आज्ञा का पालन करने ही नहीं देते। साधक भटक जाता है। उस समय यदि श्री गुरुदेव साधक को पूरब दिशा की ओर चलने का आदेश देते हैं, तो साधक ठीक पश्चिम की दिशा में चलने में अपना लाभ समझता है और उधर की तरफ ही चलता है। यह स्थिति शिष्य एवं साधक के लिये बहुत ही हानिकारक होती है। साथ ही साधक या शिष्य की प्रगति यही रुक जाती है।

हमारे आदरणीय भाई बाबू आत्मा प्रसाद सिंह एडवोकेट ने नब्बे के दशक में, आराध्यदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का जन्मोत्सव; बाबा विश्वनाथ की नगरी काशी में खूब धूम–धाम, आनन्द एवं उत्साह से मनाया था। इस महोत्सव में उन्होंने आदरणीय भाई बाबू महेन्द्र नारायण सिंह को सादर सप्रेम आमंत्रित किया था। वे पधारे भी थे एवं उनकी

सुविधानुसार रहने आदि की व्यवस्था भी की गयी थी। इस समय बाबू महेन्द्र नारायण सिंह जी आराध्यदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज जी इनके श्री गुरूदेव हैं, की आज्ञा पालन करने वाले पथ से अलहदा हो चुके थे। आदरणीय यह माई श्री महेन्द्र नारायण सिंह जी के संस्कार पिछले दस वर्षों से विपरीत चल रहे थे। कारण यह था कि इनका एक प्राणी से अत्यधिक प्यार हो गया था, इसके कारण ये जब भी ध्यान में बैठते थे, वही प्राणी दिखलायी देने लगता था। इन्होंने यह बात जब अपने श्री गुरूदेव के चरणों में सत्य एवं स्पष्ट रूप से निवेदित की तो उन्होंने अपने मुखारबिन्दु से आज्ञा प्रदान की, कि लल्ला ! अब तू मेरी अगली आज्ञा तक ध्यान में बैठना बन्द कर दो। तुम आज से ही मेरी इस आज्ञा का पालन करना आरम्भ कर दो। इस समय बाबू महेन्द्र नारायण सिंह नित्य नियम से आठ–दस घण्टे ध्यान में बैठे रहे थे। चाहिये तो यह था कि श्री गुरूदेव भगवान की आज्ञा को मानकर ये तत्काल ध्यान में बैठना बन्द कर देते, परन्तु विपरित संस्कारों की प्रबलता के कारण ये ऐसा नहीं कर सके। परिणाम वही हुआ, जिसे इनके प्रगाढ़ संस्कार कराना चाहते थे। इनकी आध्यात्मिक प्रगति इसी स्तर पर रुक गयी। इसके बाद इन्होंने अन्य दैवी एवं आसुरी शक्तियों की साधना आरम्भ कर दी। इन्हें उसकी सिद्धि भी मिली, परन्तु धीरे–धीरे ये श्री गुरूदेव के चरण कमलों से अलहदा होते गये।

आराध्यदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी का जन्मोत्सव जब काशी में मनाया गया था तो इस योग प्रचार कार्यक्रम के पाँचवें दिन एकान्त समय में आदरणीय गुरूभाई श्री महेन्द्र नारायण सिंह जी ने श्री गुरूदेव भगवान के चरण कमलों में प्रणाम निवेदित करने के बाद प्रार्थना की कि महाराज जी ! आप अब हमसे प्यार करना छोड़ दिये हैं। अपनी मधुर मुस्कान के साथ श्री गुरूदेव जी महाराज ने अपने मुखारबिन्दु से कहा कि नहीं लल्ला ! ऐसी बात नही है। इस समय तुम्हीं मनमुख हो गये हो। तुमने मेरी आज्ञाओं का पालन न करने का संकल्प ले रखा है। मैं जो भी आज्ञा तुम्हें प्रदान करता हूँ, तुम ठीक उसके विपरीत कार्य करते हो। श्री गुरूदेव भगवान ने अपने मुखारबिन्दु से, कई ऐसी आज्ञाओं को उनको गिनाया, जिसका पालन बाबू महेन्द्र नारायण जी ने नहीं किया था। श्री गुरूदेव जी महाराज की यह बात सुनकर ये निरुत्तर हो गये एवं कुछ देर तक बिल्कुल शान्त बैठे रहे। इसके कुछ समय बाद इन्होंने श्री चरणों में कुछ योग भ्रष्ट साधकों का उदाहरण देकर, आराध्यदेव जी को यह बतलाने का प्रयास किया कि अमुक–अमुक योगी साधकों ने भी तो अपने श्री गुरूदेव की आज्ञाओं के विपरीत कार्य किये। उनकी यह प्रार्थना सुनकर श्री गुरूदेव जी महाराज कुछ गम्भीर से हो गये एवं फिर अपनी गम्भीर वाणी में बोले, "लल्ला ! उचित तो यह है कि योग की पूर्णता को प्राप्त कर लेने के बाद भी, या ये समझो कि अपने परम लक्ष्य का पालन करते रहना चाहिये। अपने इसी शिक्षाप्रद प्रवचन में श्री मुख ने आगे समझाया कि लल्ला ! जिनके उदाहरण तुम हमें दे रहे हो, उनमें और तुममें अभी बहुत अन्तर है। तुमने जिन–जिन योगियों का उदाहरण दिया वे अपने लक्ष्य

की प्राप्ति कर चुके हैं। वे अपनी आवश्यकतानुसार विशेष परिस्थितियों में अपना माया जाल बनाकर उसमें कैद हो जाते हैं एवं परिस्थिति समाप्त हो जाने पर, अपना माया जाल अपनी यौगिक कतरनी (कैंची) से काटकर; मायाजाल से अलहदा हो जाते हैं। परन्तु तुम जैसे योगी साधक, अपना माया जाल बनाकर उसमें कैद तो हो जाते हैं; और मायाजाल काटने की कला न जानने के कारण; उसी में कैद ही बने रहे जाते हैं। काफी समय तक श्री गुरूदेव जी अपने इस प्रिय शिष्य को सत्य एवं कल्याणकारी रहस्य समझाते रहे, एवं आदरणीय गुरूभाई श्री महेन्द्र नारायण सिंह जी अपने तार्किक मन से अपनी बातों को उचित ठहराने का प्रयत्न करते रहे।

जिस समय का यह प्रसंग है उन दिनों आराध्यदेव जी का मिर्जापुर जनपद का कार्यक्रम आदरणीय गुरुभाई भूतपूर्व एरिया अध्यक्ष कछवा बाजार, श्री स्वामी प्रसाद सिंह जी के यहाँ; कई वर्षों से लगातार हो रहा था। सन् सत्तर के दशक में इस कार्यक्रम में; एक ग्रेजुएट बालक जो बड़ा ही सौम्य दिखायी दे रहा था, श्री गुरूदेव के चरण कमलों में प्रणाम करके प्रार्थना किया कि मैंने काफी प्रयत्न कर लिया; मेरी कहीं नौकरी नहीं लगी। मुझे कृपया प्रसाद देकर नौकरी दिलाने की कृपा की जाय। श्री गुरूदेव भगवान ने उसकी प्रार्थना सुनकर उसे पुष्प प्रसाद दिया एवं बोले कि लल्ला ! नित्य नियम से छः माह तक दो घण्टे नित्य पंचाक्षरी मंत्र का जप किया करो। यदि तुम ऐसा करोगे तो तुम्हारी नौकरी अवश्य-अवश्य लग जायेगी। कछवा बाजार का कार्य करके श्री गुरूदेव भगवान अपने अगले योग प्रचार कार्यक्रम के लिये संगम क्षेत्र प्रयाग के लिये प्रस्थान कर गये। उस बालक ने जिसने अपनी नौकरी के लिये आराध्यदेव श्री सद्गुरूदेव जी महाराज से प्रार्थना की थी, नित्य नियम से दो घण्टे प्रातः जप करना आरम्भ कर दिया। परन्तु उसके मन्त्र जप का यह कार्यक्रम लगातार पन्द्रह दिन भी नहीं चल सका। उसके सांसारिक मन ने उसे समझा दिया कि प्रातः सायं मिलकर दो घण्टे जप किया करो। कुछ दिनों तक उसने यही किया। दो महिना पूरा होते-होते, धीरे-धीरे जप क्रमशः कम करते हुये उसने मंत्र-जाप करना बन्द ही कर दिया। उसका सांसारिक मन उसे यह मानने पर बाध्य कर दिया मंत्र-जाप का भला नौकरी से क्या सम्बन्ध ? उन दिनों आदरणीय भाई श्री महेन्द्र नारायण जी के आशीर्वाद खूब फलदायी हो रहे थे। उनके आशीर्वाद से अनेकानेक प्राणियों के असम्भव संसारी कार्य सम्भव हो चुके थे। दुनिया में उनका मान-सम्मान भी खूब बढ़ गया था देवी-देवताओं की तरह लोग उनकी सेवा कर रहे थे ताकि उनकी सेवा से प्रसन्न होकर, वे उन्हें; उनकी मनोकामना पूर्ण होने का आशीर्वाद दे सकें। कारण यह था कि उनके आशीर्वाद में शक्ति थी एवं वे अवश्य ही फलदायी होते थे।

इन्हीं दिनों यह पोस्ट ग्रेजुएट लड़का भी उनके चरणों में प्रणाम निवेदित करके प्रार्थना किया कि मैंने योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के चरणों में नौकरी के लिये प्रार्थना की थी उन्होंने खाने के लिये हमें पुष्प प्रसाद दिया था एवं यह आदेश दिया था कि नित्य निमय से दो

घण्टे पंचाक्षरी मन्त्र का छः माह तक जप करो। मैंने पुष्प प्रसाद खाकर लगभग दो माह तक पंचाक्षरी मंत्र का जप भी किया परन्तु कोई लाभ नहीं किला। बालक जिस समय अपना यह प्रसंग सुना रहा था, उस समय आदरणीय गुरूभाई श्री महेन्द्र नारायण जी अपने प्रशंसकों एवं अनुयाइयों से पूरी तरह घिरे हुये थे। उन्होंने यह दिखलाने की नियत से कि मैं योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से किसी भी प्रकार कम नहीं हूँ, उस बालक से कहा कि इस कथानक को एक बार और बतलाओ कि योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से तुम कैसे मिले एवं उन्होंने तुमसे क्या कहा ? उस बालक ने जो नौकरी की नियत से उनके पास गया था, फिर उसी घटना का पूरा विवरण सबके सामने सुनाया। उसकी बातों को सुनकर वे जोर–जोर से हँसने लगे। थोड़ी देर बाद सामान्य स्थिति में आकर उन्होंने गर्व भरे शब्दों में कहा कि देखो ! मैं तुम्हें नौकरी लगने का प्रसाद देता हूँ एवं देखूँगा कि नौकरी कैसे नहीं लगती है ? प्रसाद देने के पूर्व उन्होंने उस बालक से पूछा कि नौकरी के लिये कितनी जगह प्रार्थना पत्र दिये हो ? उसने कहा कि महाराज जी ! मैंने पाँच विभागों में नौकरी लगने हेतु प्रार्थना पत्र भेजा है। तदन्तर वे अपने स्थान से उठे, पूजा स्थल पर गये। वहाँ हवन कुण्ड से विभूति निकालें। उसे संकल्पित मन से बालक को देते हुये कहा कि इसे ग्रहण कर लो। अब तुम्हें कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है। इस समय इनका विश्वास इस प्रकार का हो गया था कि ये समझ रहे थे कि माँ काली, जो इनकी ईष्ट है; सर्वोच्च है और ये सभी संसारिक एवं आध्यात्मिक कार्य में सदा–सर्वदा समर्थ है।

आदरणीय गुरूभाई श्री महेन्द्र नारायण जी का दृढ़ संकल्प से दिया गया पुष्प प्रसाद ने अपना प्रभाव दिखलाया एवं तीन माह के अन्दर ही बालक को नौकरी मिल गयी। इसे एक कृषि विश्व विद्यालय में लेक्चरर के पद पर नियुक्त कर लिया गया। इस विश्व विद्यालय में इस बालक ने अपनी ज्वाइनिंग रिपोर्ट दी एवं अगले दिन से इसे पढ़ाने का आदेश मिला।

कक्षा में पढ़ाने की नियत से प्रवेश करने वाले इस अध्यापक की प्रथम दिन ही विद्यार्थियों ने खूब जमकर हूटिंग कर दी। विद्यार्थियों ने जम के खिचाई करके बड़ा बेईज्जत किया। उस दिन कक्षा में एक शब्द भी नहीं पढ़ा पाये एवं कक्षा से निकल कर सीधे अपने निवास स्थान चले आये। दूसरे दिन अपना मनोबल बनाकर यह लेक्चरर जब कक्षा में पढ़ाने की नियत से प्रवेश किये एवं विद्यार्थियों पर कुछ कड़ाई किये तो विद्यार्थियों ने खूब अच्छी प्रकार से इनकी पिटायी कर दी। इस घटना के बाद ये लेक्चरर महोदय इतने लज्जित हुये कि कक्षा से निकलने के बाद, वे नौकरी छोड़कर अपने पैतृक निवास पर; जो मिर्जापुर जनपद में है, आ गये। इस घटना के बाद इस लेक्चरर महोदय का मनोबल इतना गिर गया कि करीब एक माह तक ये अपने घर से बाहर ही नहीं निकले। इसके बाद इस बालक की सामान्य स्थिति आने में लगभग दो महीने का समय और लग गया।

नौकरी का इच्छुक यह बालक अगले वर्ष के कछवा बाजार के यौगिक प्रचार कार्यक्रम में, जो आराध्यदेव जी के करूण कृपा की छाया में मनाया जा रहा था, फिर उपस्थित हुआ। उसने अपराहन करीब तीन बजे जब श्री गुरूदेव जी महाराज भोजन विश्राम के बाद जगे ही थे एवं उस समय मात्र चार गुरुभाई एवं परम आदरणीय बहन सुश्री उमा जी उपस्थित थीं, श्री चरणों में साष्टांग प्रणाम किया। श्री सद्गुरुदेव जी महाराज ने अपने कर–कमलों से उसे आशीर्वाद दिया। उसके बाद उस बालक ने हाथ जोड़कर प्रार्थना किया कि प्रभो ! आप से कुछ प्रार्थना करनी है। श्री मुख ने आदेश दिया कि कहो लल्ला क्या बात है ? उसने श्री गुरूदेव भगवान के कर–कमलों से पिछले साल नौकरी पाने के लिये पुष्प प्रसाद मिलने, पंचाक्षरी मंत्र का छः महीने तक जाप करने की आज्ञा के पालन करने की अपनी बात से लेकर, आदरणीय भाई श्री महेन्द्र नारायण सिंह द्वारा प्रदत्त प्रसाद से नौकरी लगने एवं छूटने तक की घटना का बिल्कुल सत्य–सत्य अक्षरशः सविस्तार वर्णन किया।

उसकी पूरी प्रार्थना सावधान मन से सुनने के बाद, आराध्यदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने अपनी मनोहारी मुस्कान के साथ कहा, "छोटे सिद्धों की कृपा ऐसी ही होती है और उनकी कृपा से नौकरी ऐसे ही लगती एवं छूटती है।"

श्री मुख ने आगे समझाया कि प्रत्येक शिष्य एवं योगी साधक को, जो अपने परम कल्याण का इच्छुक है, छोटे सिद्धों की कृपा से बचते रहना चाहिये।

* * *

परिश्रम की शूली पर शरीर को लटका दोगे तो सफलता आप से आप पीछे दौड़ी चली आवेगी और प्रशंसा करने वालों की कमी न रहेगी। ईसा मसीह जब तक जीवित था तब तक उसका संस्कार नहीं हुआ। जब शूली पर लटका दिया गया तो उसकी पूजा होने लगी। पृथ्वी के भीतर गढ़ी हुई सच्चाई एक न एक दिन अवश्य निकलती है। बीज जब तक सड़ता नहीं और न उसके रूप में परिवर्तन हो तब तक न तो उग ही सकता है और न उसमें दाने ही उग सकते हैं। अतः सफलता का दूसरा साधन 'आत्म-त्याग' है। त्याग का दूसरा अर्थ कहीं और कुछ न समझ बैठना। त्याग का अर्थ निष्क्रियता भी नहीं है।

बस 'मोहन' अपना प्यार दोगे

कु० रुक्मिणी वर्मा, सहारनपुर

मुझे कुछ देने से पहले ये वचन दे दो प्रभु।
जो हैं पतन के रास्ते, उनसे मुझे उभार लोगे।।

इतिहास साक्षी है प्रभु, हर युग में होता आया है।
तट तो अनेकों साधकों का, बस भार ही ढोता आया है।।
जो अपने 'स्व' को पूर्णतया, गुरुदेव में खोता आया है।
उस आत्म समर्पित साधक ने, निर्बीज में गोता खाया है।।

मुझे योग तट लाने से पहले, ये वचन दे दो प्रभु
बन के खिवैया नैया के, थाम मेरी पतवार लोगे।।

कुछ तन्त्र–मन्त्र की भी प्रभु, योग पथ में बाधा आती है।
जिससे साधक की साधना, बस बीच में ही रह जाती है।।
कुछ साधक की तन शक्ति, योग शक्ति नहीं सह पाती है।
और कुछ की मानस दुर्बलता, मग की अड़चन बन जाती है।।

मुझे योग मग लाने से पहले, ये वचन दे दो प्रभु
तन–मन व अन्य रोगों में, आप मुझे उपचार दोगे।।

सबसे प्रबल महाशत्रु जो, क्रोध के संग आ जाता है।
ऊँचे से नीचे ला पटके, जग में अभिमान कहाता है।।
सिर उठाये साधक में मद, जब कुछ मशहूरी पाता है।
ख्याति के लोभ में पढ़ करके, सारा महल ढा जाता है।।

मुझे उच्च गगन देने से पहले, ये वचन दे दो प्रभु।
बना पतंग जितना उड़ा लो, मेरी डोर अपने हाथ लोगे।।

एक और गलती सहज ही स्वामी, साधक में आ जाती है।
अपने से दूजे की तुलना, ऐसी लत पड़ जाती है।।
देख के ऊँची शक्ति हिये में, ईर्ष्याग्नि जल जाती है।
देखे जो कुछ नीचा स्तर, हुक्मरानी छा जाती है।।

मुझे दिव्य दृष्टि देने से पहले, ये वचन दे दो प्रभु।
ना देख सकूँ निज तन को भी, बस अपना ही दीदार दोगे।।

बन के योगी कुछ साधक, जग पैर पसारा करते हैं।
करते निर्मित कुछ नये भवन, थोड़े ना गुजारा करते हैं।।
स्वभाव नहीं सन्तोषी पर, दूजे को संवारा करते हैं।
पहचान बनाने को अलग, कुछ पंथ ही न्यारा करते हैं।।

मुझे एक कुटी देने से पहले, ये वचन दे दो प्रभु।
तन–मन कुटी में बासकर, मुझ पूर्ण पर अधिकार लोगे।।

अन्तिम श्वास तक सद्‌शिष्य, बनने की धुन समा जाये।
तेरे नाम की धुन हर श्वास में मेरे, दिव्य नशा चढ़ा जाये।।
मन बने चातक तुम स्वाति के, मेरे नयन में 'चन्द्र' समा जाये।
मेरा रोम–रोम प्रभु रामलाल, जाकी भक्ति में ही रमा जाये।।

मुझे कुछ 'दिव्य' देने से पहले, ये वचन दे दो प्रभु।
नाम, पद, प्रतिष्ठा छीनकर, बस 'मोहन' अपना प्यार दोगे।

* * *

अन्तर्मुखता

अन्तर्मुखी होकर अपने भीतर ही विराजमान परमज्योति का संदर्शन करें, भीतर ही हमारे सुख और शान्ति का भण्डार है, भीतर ही सब कुछ है। बाहर तो व्यवहार जगत् है। बाहर के धन, भोग और यश भीतर के प्रकाश की तुलना में हेय एवं तुच्छ हैं। बाहर सुख के लिए न भटक कर, बाहर केवल क्रियाकलाप करते हुए, भीतर ही अपने आपको, अपने गुरु को तथा अपने परमेश्वर को देखने का प्रयत्न करो।

अपने भीतर के विशाल जगत् को प्रकाशित बिना किये हुए आप बाहर भटकते ही रहेंगे। अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी जीवन में सामंजस्य होना चाहिए। जिसने, स्वान्तः (अन्तःकरण) का समुचित मूल्यांकन कर, उसके अनुरूप आचरण करना प्रारम्भ कर दिया, उसके जीवन में सुख का उदय हो गया, जीवन एक सुख बन गया।

—श्री शिवानन्द

संस्कार मुहूर्त एवं जुड़वा संतानों के ज्योतिष रहस्य

पं० महेश **बोहरे, एडवोकेट**—ज्योतिष सम्राट (गोल्ड मैडेलिस्ट)
राघौगढ़, जिला गुना म०प्र०

यह सृष्टि हमेशा से कर्म और संस्कारों से संचालित होती आ रही है। लौकिक जगत में कर्म और संस्कारों का सतत निर्वहन ही जीवन है। जन्म से मृत्यु पर्यन्त चाहे वे मनुष्य हों, या पशु, पक्षी, कीट, मकोड़े, कोई भी हों, उन्हें अपनी नैसर्गिक क्रियाओं को निर्बाध गतिमान समय चक्र के साथ आजीवन करते रहना है।

संस्कार जनित कार्य सुकर्म तथा असंस्कारित कार्य दुष्कर्म होते हैं। सामाजिक जीवन में सुसंस्कारित सुकर्मों की सर्वत्र प्रशंसा के साथ उस कर्मवान व्यक्ति का सर्वमान्य सम्मान किया जाता है, किन्तु दुष्कर्मरत दुष्कर्मी द्वारा किये जाने वाले दुष्कार्यों की सर्वत्र आलोचना के साथ–साथ उस दुराचारी को सामाजिक उपेक्षा का दण्ड भी भोगना पड़ता है।

सामाजिक जीवन में मनुष्य द्वारा किये गये कार्य का परिणाम ही, उसे अच्छे बुरे की संज्ञा देता है। जबकि कार्य का परिणाम, उसे सम्पन्न करने के काल चक्र में भोग कर रहे, ज्योतिषीय दृष्टि से तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण इन पाँचों पर निर्भर करता है। इन पाँचों का दैनंदिन भोग मान ही पंचांग है, समयचक्र के इन्हीं पाँचों अंगों में सृष्टि संरचना संचालित हो रही है।

सृष्टि संरचना के समय चक्र को गतिमान करने वाले उक्त वर्णित पंचाग भी सुयोग और कुयोगकारक होते हैं, जैसे गुरुवार को पुष्य नक्षत्र अमृत सिद्धि योग कारक होता है, तथा गुरुवार में पूर्णा तिथि अर्थात् पंचमी, दशमी एवं पूर्णिमा हो तो सिद्धियोग होता है जो दोनों ही योग कर्मवान को कर्मसिद्धि प्रदान करने वाले हैं, किन्तु शुक्रवार में पुष्य नक्षत्र कर्म नाशक तथा शनिवार में पुर्णा तिथियाँ पंचमी, दशमी पूर्णिमा हों तो मृत्युयोग कारक होकर कर्मवान के कार्य एवं जीवन को क्षति कारक है। रविवार के दिन हस्त नक्षत्र अमृत सिद्धि योग कारक होता है, जो किसी कार्य के संपादन में स्थायी सफलता देता है, किन्तु यह हस्त नक्षत्र शनिवार को मृत्यु योग कारक हो कर कार्य नाशक बन जाता है। इसलिये लौकिक जीवन में कर्मवान व्यक्तियों के लिये कार्य की सार्थकता, सफलता एवं सिद्धि के लिये, सृष्टि के समय चक्र को गतिमान कर रहे उक्त पंचांग तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण जनित मुहूर्तों पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक होता है। कर्मसिद्धि उसके "श्रीगणेश" अर्थात् शुभारम्भ पर ही निर्भर करती है।

किसी भी छोटे–बड़े कार्य की बुनियाद ज्योतिषीय दृष्टि से उस कार्य हेतु निर्धारित मुहूर्त पर ही निर्भर करती है। शुद्ध एवं शोधित मुहूर्त में की गई देव प्रतिष्ठायें पाषाण को भी भगवान

बना कर जीवंत कर देती हैं। आज जितने भी पुरातन देव मन्दिर हैं, उन देवालयों की सादियाँ पुरानी, आधार शिलायें तथा उन देवालयों में प्रतिष्ठापित देव प्रतिमाओं के जागृत देवत्व में मूल रूप से निहित है, उनके शुभारम्भ का ज्योतिष मनीषियों द्वारा शोधित श्रेष्ठतम मुहूर्त। बद्रीधाम में भगवान बद्रीनारायण की आदि कालीन स्थापना आज भी इसका जागृत उदाहरण है, वैसे तो सम्पूर्ण हिमालय ही स्वमेव आदि देवस्थान है, जिसमें शिव का वास है तथा गंगा का उद्गम निहित है। वास्तु कर्म चाहे वह आवासीय हो, औद्योगिक हो, देवस्थान अथवा सार्वजनिक संस्थान धर्मशाला आदि का हो या फिर कृषि कार्य के लिये कुआँ, बावड़ी, तालाब आदि का हो, पंचांग शुद्ध मुहूर्त पर ही मूलरूप से आधारित रहता है। क्योंकि किये गये वास्तु कर्म का अस्तित्व सदियों के लिये दीर्घकालिक होता है।

ज्योतिषीय दृष्टिकोण से हमारे ऋषी महर्षियों तथा ज्योतिष मनीषियों ने लौकिक जीवन के सभी संस्कारों के लिये समयोचित मुहूर्त निर्धारित्त किये हैं। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त यद्यपि षोड्स संस्कार का प्रावधान शास्त्रगत है। किन्तु लौकिक जीवन में अनेकानेक कर्म ऐसे हैं जिन्हें सामाजिक दायित्वाधीन हर व्यक्ति को करना आवश्यक होता है। दृश्यजगत में समय की गति दिन-रात्रि के क्रम में गतिशील है, जो स्थिर नहीं है। दिन व्यतीत हुआ तो रात्रि आती है, रात्रि व्यतीत हुई तो दिन आता है। मनुष्य जीवन में अच्छे बुरे समय की गति भी दिन-रात की तरह ही आती जाती है, इसलिये अच्छे समय को दिन की तरह तथा बुरे समय को रात्रि की तरह उपयोग करना चाहिये। क्योंकि मनुष्य की कर्मवृत्ति पर ही सृष्टि का सृजन निर्भर करता है।

सृजन और विनाश सृष्टि के दो मुख्य पहलू हैं। सृजन विनाश की ओर अग्रसर करता है तो विनाश सृजन की पुनरावृत्ति भी उसी प्रकार है जैसे दिन के बाद रात और रात के बाद पुनः दिन। सृष्टि में उत्पत्ति का क्रम भी इसी प्रकार है उत्पत्ति, विनाश और फिर उत्पत्ति। बीज अमर है, शरीर नश्वर है। बीज में ही उत्पत्ति निहित है। बीज की उत्पादन क्षमता भी समय की गति के अधीन है।

सामान्य रूप से कृषि कार्य के लिये ज्योतिष शास्त्र में उन्नत उत्पादन के लिये हल प्रवहन एवं बीजोप्ति मुहूर्त का विधान है। पंचांग शुद्ध मुहूर्त में उन्नत उत्पादन हेतु बीज बोने से ही कुशल कृषक अच्छी पैदावार लेकर स्वयं का तथा समाज का पोषण करता है। यदि बौनी अर्थात् बीजारोपण पंचांग शुद्ध मुहूर्त में नहीं हो पाता है तो निश्चित ही फसल को रोग एवं अन्य प्रकोपों से क्षति होती हैं।

जिस प्रकार कृषि कार्य में बीजोप्ति मुहूर्त का विधान है उसी प्रकार सृष्टि संरचना में संतानोत्पत्ति के लिये भी गर्भाधान मुहूर्त का विधान है। जो मनुष्य दाम्पत्य जीवन में पंचांग शुद्ध विहित मुहूर्त में सृष्टि संरचना की भावना से पत्नि संगमन कर आधान क्रिया प्रवृत होते हैं, उन्हें निश्चित ही स्वस्थ्य, सुंदर, सुशील एवं पराक्रमी संतान की प्राप्ति होती है। जन्म काल की लग्न

से भी अधिक महत्वपूर्ण होती है, आधान काल की लग्न। कई व्यक्तियों के जन्म लग्न की ग्रह स्थिति अच्छी होते हुये भी उनका जीवन संघर्षमय होकर दुःखी बना रहता है, उसका मूल कारण उनके गर्भाधान कालिक लग्नस्थ गृह जनित प्रभाव का होता है जिस पर समान्यतया विचार नहीं किया जाता है।

ज्योतिष जगत में, एक ही लग्न में जन्मी जुड़वा संतानों के जीवन में पृथक भविष्य को लेकर कई बार प्रश्न किये जाते हैं, क्योंकि एक ही लग्न व नक्षत्र में जन्म होने से जुड़वा सन्तानों को जन्म लग्न में ग्रह जनित प्रभाव तथा महादशा क्रम भी लगभग एक ही जैसा रहेगा तथापि जुड़वाँ सन्तानों के आचार व्यवहार एवं जीवन यापन क्रम में बड़ा अन्तर होता है। इसका कारण सामान्य रूप से कदाचित भी कोई ज्योतिषी नहीं बता पाता है। क्योंकि उनका दृष्टिकोण जन्म कालिक लग्न में स्थित ग्रहों तथा जनम नक्षत्र तक ही सीमित रह जाता है, जुड़वा सन्तानों के आधान काल लग्न के बारे में विचार ही नहीं किया जाता है, जबकि जुड़वा सन्तानों का जीवन जन्म लग्नस्थ ग्रहों पर आधारित न रह कर आधान काल लग्नस्थ ग्रहों पर आधारित होगा। क्योंकि दोनों गर्भाधान अलग–अलग समय व लग्न में ही होंगे इसके अतिरिक्त प्रथम गर्भाधान के बालक का जन्म बाद में होगा तथा पश्चानवर्ती द्वितीय गर्भाधान के बालक का जन्म पहले होगा। यदि जुड़वा संतानें एक पुत्र तथा एक पुत्री हैं तो निश्चित ही उनका गर्भाधान अलग–अलग दिनों में हुआ है, क्योंकि स्त्री के रजोधर्म के प्रथम चार दिवस के पश्चात विषम संख्यक अर्थात् ५, ७, ६ वें दिवस में गर्भाधान पुत्री संतति कारक होता है तथा सम संख्यक अर्थात् ४, ६, ८, १० वें दिवस में गर्भाधान पुत्र संतति कारक होता है। यदि जुड़वाँ संतानें दोनों पुत्र हैं तो दोनों गर्भाधान एक दिन अलग–अलग समय व लग्न में होंगे अथवा प्रथम गर्भाधान से एक दिन छोड़कर अगले दिन दूसरा गर्भाधान होगा। इस तरह यदि जुड़वाँ संतानें दोनों पुत्री हैं तो दोनों गर्भाधान एक ही दिन अलग–अलग लग्न व समय में होंगे अथवा प्रथम गर्भाधान से एक दिन छोड़कर अगले दिन दूसरा गर्भाधान होगा। इस प्रकार जुड़या संतानों का भविष्य जन्म लग्नों से फलित न होकर उनकी गर्भाधान कालिक लग्न से फलित होता है।

वर्तमान युग में लोगों ने पंचांग शुद्ध मुहूर्तों को लौकिक जीवन में जितना उपेक्षित किया है पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में उतनी ही विसंगतियाँ एवं परेशानियाँ उत्पन्न हो रही हैं। इसलिये लौकिक जीवन में सृष्टि संरचना में प्रवृत कर्मवान व्यक्तियों को शास्त्र सम्मत पंचांग शुद्ध विहित मुहूर्त में ही अपने दायित्वाधीन व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक कार्यों का निर्वहन करना चाहिये इसी में स्वयं का, परिवार का, समाज का एवं राष्ट्र का हित है। संस्कारित सृजन ही संस्कारित समाज एवं संस्कारित राष्ट्र का आधार है।

* * *

मास्टर हुकुम चन्द की योग साधना

श्यामलाल, सिरसा हरियाणा

कबीरा जग में आये थे, जग हंसा हम रोए।
ऐसी कहानी कर चले, हम हसें जग रोए।।

मा. हुक्म चन्द जी जिनका जन्म जुलाई १९२४ को गाँव भट्टू के नजदीक ढुईयावाली में लाला छज्जू राम जी ढुईयावाले के घर हुआ। वे बचपन से ही बड़े समाज सुधारक थे जिसके फलस्वरूप उन्होंने बचपन में ही R.S.S. संस्था को जॉईन किया तथा देश की स्वतन्त्रता संग्राम में बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया और गौ हत्या आन्दोलन में हिस्सा लेते हुए कई बार सत्याग्रह करके कई बार जेल गए। एक बात मैं विशेष रूप से बोलना चाहूँगा कि जब गाँधी जी की हत्या होने पर R.S.S. पर ब्यान लगाया गया तब ये सरकार के विरूद्ध सत्याग्रह करके जेल गए थे उसी समय परमपूज्य गुरूदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने इन्हें जेल में सोई अवस्था में दर्शन दिए, उन्होंने देखा कि कोई महाराज क्लीन शेव हैं शिला पर विराजमान हैं और चारों तरफ से लोगों ने घेरा हुआ है और गुरुदेव नमों-नमों का उच्चारण कर रहे थे इसी दौरान उनकी आँखें खुल गईं। उन्होंने ये सारी घटना अपने एक साथी को बताई, उन्होंने कहा कि यह शुभ लक्षण नहीं है। स्वप्न के मुताबिक अपने गुरुदेव पर जो कि उस समय R.S.S. के गुरु थे उन पर कोई बड़ा संकट आने वाला है। मास्टर जी उन्हीं की देख-रेख में लग गए।

योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज जी का स्थूल रूप में दर्शन

सन् १९६७ में जब महाराज जी चंडीगढ़ में रहा करते थे इनको एक दिन श्री ओमप्रकाश जी शर्मा के घर दशहरे के दिन जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जहाँ पर हमारे प्राणी मात्र के विधाता श्री चन्द्रमोहन जी पहले से ही मौजूद थे जब मास्टर जी ने वहाँ प्रवेश किया तो उनको सन् १९४८ में सोयी अवस्था में जो दिखाई दिया था वही दृश्य उनके सामने था अगर आँख बन्द करते थे तो गणेश के दर्शन होते थे अगर आँख खोलते थे तो शिला पर हमारे गुरूदेव विराजमान थे जैसे ही गुरूदेव जी की दृष्टि इन पर पड़ी जैसे कोई जन्मों का बिछड़ा बच्चा काफी समय बाद मिल रहा हो, गुरुदेव जी ने मुस्कुराते हुए अपनी तरफ बुलाया और अपनी जीवन भर की R.S.S. की कमाई को भूल कर गुरूदेव जी के चरणों में लिपट गए। और उसी समय श्री महाराज जी से दीक्षा ग्रहण कर ली उसके बाद उनका जीवन तपो मय हो गया हर समय उठते-बैठते सोते जागते हर समय कानों में एक ही शब्द गूंजता था और मुख से एक वाणी निकलती थी गुरूदेव जय जय सत् गुरू जय जय अखण्ड ज्योति प्रभु रामलाल जय जय।

ग्रहस्थ आश्रम में रहने के बावजूद भी उन्होंने गुरूदेव जी की आज्ञा का अक्षरक्ष पालन किया इनके जीवन का ये ध्येय था कि गुरूर आज्ञा ना उल्लंघनिय। जो गुरूदेव जी सत्संग का भार उनके कंधों पर डाला था उसको ये जीवन भर निभाते रहे। मास्टर जी बच्चों के सिर पर

हाथ रखकर ध्यान लगवाते थे। दुनिया में शायद कोई ऐसा आश्रम हो जहाँ ध्यानावस्था में अपने गुरू देव से बात होती है।

मैं फरवरी १९८३ में महाराज जी के चरणों में आया उस समय मैं महाराज जी को जानता नहीं था लेकिन मास्टर जी के प्यार ने मुझे महाराज जी के चरणों में आने के बाद कहीं जाने का मौका नहीं दिया, मैंने अपनी जिन्दगी के अन्दर किसी ऐसे इन्सान को जो बिल्कुल जानता नहीं प्यार करते नहीं देखा ऐसी अवस्था के अन्दर जब मैं बीमार था अपने भी साथ छोड़ जाया करते हैं और लोगों का कहना कहीं गलत नहीं है कि समय पड़ने पर तो अपना साया भी साथ छोड़ जाया करते हैं मेरे जैसे तुच्छ प्राणी को भी भरपूर प्यार दिया। शायद बाबूजी ने अपनी जिन्दगी के अन्दर अपने बच्चों के सिर पर हाथ नहीं रखा होगा और मेरे जैसे छोटे से जीव के सिर पर हाथ रखा और गुरूदेव से कह दिया कि ये बच्चा आपके चरणों में आया है इसे आप ही संभालिए, प्यार का ही ऐसा नतीजा था कि मैं कई धर्म स्थानों पर गया लेकिन महाराज की याद को मैं दिल से नहीं निकाल पाया मुझे गुरु जी के वो शब्द याद आते हैं जो उन्होंने जज हरिहरराय के बारे में कहे थे। जाने वाले को जाने दो भाई प्रभु जी सबका भला करते हैं। वक्त आने से पहले कभी ना प्यारे सद्‌गुरू मिला करते हैं। मैं यहाँ एक बात स्पष्ट करना चाहूँगा कि उन्होंने शरीर छोड़ने से एक सप्ताह पहले रविवार को हमारे गुरू भाई रमेश जी को कहा कि तुम मेरी बातों को गौर से नहीं सुन रहे हो फिर तुम्हें ये बातें सुनने को नहीं मिलेंगी।

मास्टर हुक्मचन्द जी का जीवन महाराज के चरणों में रह कर इतना तपोमय हो गया कि इनके पास प्रत्येक आने वाला जीवन अपने आपको सौभाग्य शाली जीव समझने लगा। अगर गुरूदेव जी किसी काम के लिये इन्कार कर दिया करते तो मास्टर जी गुरूदेव जी के सामने यह कहते संकोच नहीं करते थे कि यह काम तो करना पड़ेगा। मैंने अपनी जिन्दगी में एक बार नहीं अनेकों बार ऐसे कार्य होते देखें हैं गुरूदेव भगवान कहा करते थे कि मास्टर हुक्मचंद मेरी आत्मा का टुकड़ा है उसी के फलस्वरूप उन्हीं के सभी कार्य क्षण भर में हो जाया करते थे। उन्होंने अपने जीवन के अन्दर गुरु भक्ति ही माँगी धन नहीं माँगा। ऐसे लोग संसार में विरले ही होते हैं जो धन को त्याग कर लोभ को त्याग कर गुरू भक्ति ही माँगते हैं, जैसे सुदामा ने श्री कृष्ण से, भीलनी ने श्री राम से, ध्रुव ने श्री विष्णु से माँगी थी। मास्टर जी का हाथ हमेशा अपने बच्चों के सिर पर रहा है। मैंने अन्तिम समय में जब बीमार अवस्था में अस्पताल में थे अपने बच्चों को गुरू भाईयों को आशीर्वाद देते देखा है। क्या कोई इन्सान अपने दुख को भूलकर दूसरों के दुख को अपनाता है ये एक गृहस्थ में रहने वाले अनोखे संत थे जो कि दुनिया को दिखाने के लिए शरीर छोड़ने से पहले अस्पताल में दाखिल हो गए उनकी लौ गुरू के चरणों में लगी रही हम लोग नहीं समझ पाए हमने महाराज जी को कहा कि कुछ और जीवन दो लेकिन उन्होंने अपना मन जाने का बना लिया था महाराज जी उनकी बात मानते थे उनकी बात को कभी नहीं टालते थे अतः महाराज जी ने उन्हीं की बात को माना, मास्टर जी की ज्योति १५ मई २००२ को ८ बजकर ३५ मिनट पर महाराज जी के चरणों में विलीन हो गई शरीर

त्यागने से पहले ८ बजकर ३० मिनट पर उन्होंने अपनी बेटी को तीन बार गुडडी-गुडळी कह कर बताया कि हम जा रहे हैं। शरीर त्यागने के बाद इनके चेहरे पर अजीब सी मुस्कान थी जैसे इन्हें कोई गम ना हो इन्होंने अपनी ७७ साल की उम्र को पूरा करने के बाद भी ऐसी नींद सो रहे थे जैसे कोई थका मुसाफिर पूर्ण विश्राम कर रहा होता है। भगवान कृष्ण की एक बात मुझे याद आती है कि मोक्ष की प्राप्ति उसको होती है, जिसकी ज्योति मेरे चरणों में विलीन हो जाती है। उसके बाद फिर जन्म नहीं होता। हमारे मास्टर जी उनमें से एक थे हमें उनके बताए हुए मार्ग पर चलना चाहिए और उनको पूर्ण करने का प्रयास करना चाहिए, अब मैं अपने गुरूदेव भगवान को और बाबूजी को प्रणाम करता हूँ। और मुझे पूर्ण विश्वास है कि गुरूदेव भगवान ने मास्टर जी को अपने चरणों में स्थान दे दिया होगा अगर लेख में कोई गलती रह गई हो तो मुझे माफ करना।

बड़े शौक से सुन रहा था जमाना।
तुम्हीं सो गए दास्तां कहते-कहते।।

* * *

सहारनपुर में श्री प्रभु जी की कृपा वर्षा

प्रेमचन्द्र सविता, कानपुर

सहारनपुर (उ०प्र०) में नारायणपुरी मोहल्ले में एक पवित्र स्थान दुर्गा बाडी में परम कर्णार्णव प्रातः स्मरणीय भगवान श्री सद्‌गुरु देव योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज जी की कृपा से योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के पावन चरण कमलों में सादर समर्पित प्रथम त्रिदिवसीय सघन साधना शिविर दिनांक ३० मार्च से १ अप्रेल, २००३ के बीच बड़े ही धूम-धाम और हर्षोल्लास के वातावरण में सम्पन्न हो गया।

इस साधना शिविर की प्रेरणा श्री सिद्धगुफा योग साधक मण्डल, सहारनपुर के कुछ भाईयों श्री चन्द्रमणि गोयल, उनकी पत्नी श्रीमती शकुन्तला गोयल तथा उनके दामाद श्री मुकेश गुप्ता और उनकी लड़की श्रीमती अर्चना गुप्ता तथा कुमारी रुक्मिण वर्मा आदि को ही श्री प्रभु जी की कृपा से हुई थी। इसीलिए इसका सभी तरह का श्रेय भी उन्हें ही जाता है।

प्रातः ५ बजे मंगला आरती से प्रारम्भ होकर तीनों दिन दैनिक व्यस्त कार्यक्रम सायंकाल ८.३० बजे आरती के साथ ही सम्पन्न होते थे। अंतिम दिन बहिन रुक्मिणी वर्मा की भिक्षा का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। श्री विजयपुरी जी, श्री भुवनेन्द्र झा, भाई आर.सी. ठाकुर एवं सविता जी के भावपूर्ण भजनों ने भक्तों को भावविभोर कर दिया। सद्‌गुरूदेव जी के अपने पंच भौतिक शरीर के ओझल कर निज स्वरूप में विलीन होने के बाद सहारनपुर में हुए इस प्रथम कार्यक्रम में आचार्य चन्द्रहास शर्मा द्वारा श्रीमद्‌भगवद्‌गीता और अष्टांग योग पर आधारित्त सारगर्भित प्रवचन विशेष उल्लेखनीय रहे।

श्री रामनवमी का पावन महोत्सव धूमधाम से मनाया गया।

प्रभुजी कृपास्थली श्री सिद्धगुफा सवाँई पर

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी श्री रामनवमी महोत्सव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के परम पावन प्राकट्य दिवस के रूप में यह उत्सव ६, १० और ११ अप्रेल को मनाया गया। ६ अप्रेल से ही श्रद्धालुओं की भीड़ उमड़ने लगी थी। ६ अप्रेल को सदा की भाँति प्रातः ६ बजे आनन्द कन्द श्री प्रभुजी की आरती धूमधाम से हुई, आरती के पश्चात श्री ब्रह्मचारी दासलालजी के आचार्यत्व श्री गुरूगीता का पाठ कराया गया, पाठ के पश्चात् गुरू तत्व पर मार्मिक एवं सार गर्भित प्रवचन हुये।

सर्व प्रथम सिद्धयोग के सम्पादक आचार्य दासलालजी ने गुरूतत्व की व्याख्या करते हुये कहा कि "भागवत् आदि पुराणों में भगवान् के लिये जिन विशेषणों का प्रयोग होता है उन्हीं शब्दों व विशेषणों का प्रयोग गुरूदेव के लिए गुरूगीता में हुआ है। गुरूदेव सच्चिदानन्द स्वरूप हैं, व्यापक हैं, परमात्मा हैं तथा अविद्या ग्रन्थि का भेदन करने वाले हैं। ऐसे गुरूदेव–गुरूनाथ को बारम्बार प्रणाम है। इस प्रकार से गुरूगीता के अनुसार गुरूदेव ही परमात्मा हैं।

इसी श्रृंखला में डा० विजय सिंह जी ने गुरूतत्त्व की व्याख्या करते हुये गुरूदेव के हृत्स्पर्शी संस्मरण सुनाये। अपने संस्मरण में उन्होंने इस बात का संकेत साधकों को दिया कि गुरूदेव ने अपने शिष्यों के आत्मोत्थान के लिए पूरा–पूरा प्रयास किया अनेक प्रकार की शक्तियाँ तथा सामर्थ्य प्रदान की किन्तु साधक की नाड़ी शुद्धि अथवा चित्त शुद्धि के अभाव में उन्नति रुक गई तथा कई साधक यम–नियम के पालन के अभाव में शक्ति को सुरक्षित नहीं रख पाये।

६ ता० को दोपहर भोजनोपरान्त फिर सत्संग का कार्यक्रम रखा गया था, स्वामी बोधानन्द जी ने योग पर व्याख्यान दिये। उन्होंने स्पष्ट किया कि योग क्या है ? जीव और ब्रह्म का मेल योग है, आत्मा परमात्मा का संयोग ही योग है। प्राण और अपान का मिलन योग है, योग से समस्त प्रकार के दुःखों की निवृत्ति सम्भव है, हम दिव्य महापुरुषों की सन्तान हैं फिर भी दीन–हीन संतापित जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इसका एक ही कारण है। हमने योग की उपेक्षा की है, अब आनन्दमय जीवन बिताने के लिए योग को हमें जीवन के प्रत्येक क्षण में जीवन में प्रयोग में लाना चाहिए। योग की मानव को हर प्रकार से आवश्यकता है।

इस सत्र में ही योगाचार्य डॉ० दासलाल ब्र० जी ने योग विद्या के अविनाशी स्वरूप का निरूपण करते हुये इसे 'अमृत विद्या' की संज्ञा दी है। इसे उपनिषदों में पराविद्या, ब्रह्म विद्या कहा गया है। यही मनुष्य के कल्याण का एक मात्र अचूक साधन है। रात्रि को संकीर्तन का

कार्यक्रम चलता रहा। श्री कृष्ण कान्त जी के बच्चों (छात्रों) ने श्री प्रभु जी के चरति के भजन प्रस्तुत कर सबको रोमांचित कर दिया, सर्वप्रथम उन्होंने गुरूचरण वन्दना से कार्यक्रम शुरू किया।

गुरू चरणों का अभिनन्दन
करूँ मैं बार-बार वन्दन।

इस भजन से उपस्थित जनसमूह की आँखें सजल हो गयी। इसके बाद–

आओ भाई तुम्हें सुनाये गाथा प्रभु रामलाल की।
पल भर में जो रचना कर दे ऐसे दस ब्रह्माण्ड की।।

इस भजन से गुरूदेव की महिमा बताकर दर्शकों को तालियों की ताल पर झूमने को मजबूर कर दिया तथा कृष्ण के अन्य पदों को शास्त्रीय संगीत में सुनकर साधक अत्यन्त पुलकित हुए।

१० अप्रेल को प्रातः गुरूगीता का पाठ कराया गया। आचार्य दासलालजी डॉ० विजय सिंह तथा बोधानन्द जी के योग परक व्याख्यान हुये। दोपहर बाद महिला संकीर्तन के पश्चात् ५ बजे सायं जीवन तत्व साधन तथा योगासनों का प्रदर्शन ब्र० महावीर के द्वारा आचार्य दासलाल जी के तत्वाधान में कराया गया। ब्रह्मचारी महावीर ने अत्यन्त सराहनीय प्रदर्शन किया तथा दर्शकों से दाद (प्रशंसा) लूटी, गर्भासन व वृश्चिकासन पर जमकर तालियाँ बजायी गयी। नेति, जल नेति, कपाल भाति आदि षट्कर्मों का भी प्रदर्शन किया गया। रात्रि को फिर झाँसी मण्डल के बच्चों ने श्री प्रभुजी के भजन प्रस्तुत किये।

११ अप्रेल को रामनवमी के दिन ६.३० बजे प्रातः कालीन आरती के पश्चात् श्री प्रभुजी का पूजन प्रारम्भ हो गया। हजारों की संख्या में गुरू भक्तों ने गुरूदेव के चरणों में श्रद्धा सुमन अर्पित किये। लम्बी–लम्बी कतारें लगी, सायं ४ बजे तक यह क्रम चलता रहा। दोपहर १२ बजे ब्रह्म–भोज के साथ ही भण्डारा प्रारम्भ हो गया जो शाम को ६ बजे तक अनवरत चलता रहा। प्रातः ४ बजे की आरती के पश्चात् उत्सव सम्पन्न हो गया। इस उत्सव में भारत के सुदूर भागों धनबाद (झारखण्ड) कलकत्ता, बम्बई, गुजरात, जम्मू, पंजाब, हरियाणा, हिमाचल, राजस्थान से आये भक्तों ने आकर अपने को धन्य किया। उत्सव में ऋषिकेश से पधारे आचार्य पूर्णचन्द जी का सहयोग सराहनीय रहा। भण्डारे की सम्पूर्ण व्यवस्था का कार्य भार उनके कन्धों पर था। दिल्ली से आये आचार्य वेदराम जी का भी सहयोग भुलाया नहीं जा सकता। इटावा आश्रम के अध्यक्ष/संरक्षक ब्र० शम्भूनाथ जी का सहयोग भी अविस्मरणीय है। सम्पूर्ण कार्यक्रम में चिकित्सा सेवा के लिए डॉ० लोकेन्द्र सिंह व डॉ० भवानी शंकर सन्नद्ध रहे। सभी ब्रह्मचारियों ने पूर्ण मनोयोग से उत्सव में भाग लेकर इस पावन उत्सव को सुव्यवस्थित एवं सुचारू बनाया।

१२ ता० से श्रद्धालुओं की विदाई का कार्यक्रम प्रारम्भ हो गया। सभी ने अश्रुपूरित नेत्रों से गुरूदेव से विदाई ली और अपने–अपने मन में गुरूदेव की कल्याण प्रदाता छवि को धारण करते हुये अपने–अपने गन्तव्य की ओर प्रस्थान किया। ❋ ❋ ❋

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि

(मेरे में चित्तवाला होकर सम्पूर्ण विघ्नों को पार कर जायेगा)

पं० राजेन्द्र प्रसाद पाठक

संसार में रहना सूक्ष्म दोषों का भी कारण है, सूक्ष्म दोष से अभिप्राय यह कि मनुष्य योनि में भी, यदि कुछ अपराध होता है तो वह यही कि वह संसार के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ लेता है और लिप्तत: श्री भगवान से विमुख हो जाता है, अतः भगवान कहते हैं कि यदि श्री संसार की संसर्ग जन्य लोलुपता से सर्वथा विमुख हो गया तो उसने मुझमें अवश्य ही अटल सन्निवेश पा लिया। परन्तु होता यह है कि वास्तविक तत्व प्राप्ति में, संसार के लोगों की तुलना आदि में, स्वयं में कुछ विशेषता पाकर देहाभिमान हो जाता है जो नहीं होना चाहिये और यही सूक्ष्म–दोष से वञ्चित होने के लिये श्री प्रभु को समर्पित हो जाना चाहिये। जिससे उन दोषों को तथा विघ्न–बाधाओं को दूर करने की पूरी जिम्मेदारी श्री भगवान पर हो जाय।

सत्य बात तो यह है कि जीव साक्षात परमात्मा का ही अंश है (ईश्वर अंश जीव अविनाशी) तथा **'ममैवरंशो जीव लोके'। श्रीरामायण एवं श्रीगीता'।**

अतः यदि वह केवल अपने अंशी परमात्मा की तरफ चलता है तो उस पर देव, ऋषि, प्राणी, माता–पिता, आप्त–जन आदि पितरों का भी कोई ऋण नहीं रहता क्योंकि विशुद्ध चेतन अंश ने कभी कुछ लिया ही नहीं बल्कि लेना–तभी बनता है जब जीव जड़ शरीर को ही सब कुछ समझते हुये उससे या उन वस्तुओं से अपना ममत्व सम्बन्ध जोड़ता है। श्री मद्भागवत महापुराण इसी बात की पुष्टि करता है कि–''राजन् (परीक्षित) जो सारे कार्यों को छोड़कर सम्पूर्ण रूप से शरणागत वत्सल भगवान की शरण में आ जाता है, वह देव, ऋषि, प्राणी, कुटुम्बीजन और पितृगण–इनमें से किसी का भी ऋणी और सेवक नहीं रहता।''

देवर्षि भूताप्तनृणां पितृणां न किंकरो नायमऋणी च राजन्।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकन्दो परिहत्य कर्तम्।।

(श्री मद्भागवत् ११/५/४१

प्रायः जीवन–निर्वाह की समस्या, शरीर में रोग आदि अनेक विघ्न बाधाओं के बावजूद भी भगवद्भक्त कभी अपने प्रगाढ़–भक्ति से विचलित नहीं होता है। बल्कि निर्विघ्नतः उसे हर कर्मों में भगवान की ही कृपा सी लगती है। भक्त के साधन में तो इतनी शक्ति अवश्य है कि सम्पूर्ण विघ्न बाधायें स्वयं ही समाप्त हो जाती हैं महाभारत की कुन्ती जब भी भगवान का संस्मरण करती, भगवान श्रीकृष्ण स्वयं ही पधारते जबकि उसमें कौरवों के प्रति द्वेषात्मक बुद्धि थी। भगवान की कृपा में जो शक्ति है वह शक्ति किसी भी साधन में नहीं है बल्कि साधक में अवश्य है। अतः मनुष्य का जन्म केवल परमात्माप्राप्ति के स्वाभाविक धर्म से है। पुनः श्री मद्भागवत महापुराण इन बातों की ओर संकेत करता है कि–

साङ्गोपाङ्गनपि यदि पश्य वेदान धीयते।
वेद वेद्य न जानीते वेद भारवहो हि सः।।

(महाभारत, शान्ति० ३१८/५०)

इस प्रकार मनुष्य जब तक परमात्म प्राप्ति नहीं कर लेता, तब तक अपने को स्फुरणाओं से बचा नहीं सकता, अतः स्फुरणाओं से बचने के लिये विचार की शुद्धता अति आवश्यक है। विचार ही कर्म एवं प्रारब्ध का दाता है। सञ्चित में से जो कर्मफल देने के लिये हमारे सामने होते हैं। उन्हें ही प्रारब्ध कर्म कहते हैं, कहा भी गया है कि–'प्रकर्षेण आरब्धः इति प्रारब्धः' अर्थात् अच्छी तरह से फल देने के लिये जिसका आरम्भ हो चुका है, उसे ही 'प्रारब्ध' कहते हैं। परन्तु परिवर्तनशील परिस्थिति के साथ सम्बन्ध मानते हैं, वे अविवेकी पुरुष ही दुखी होते हैं। किन्तु विवेकी पुरुष इसके साथ अपना सम्बन्ध न मानकर स्वतः साम्यावस्था वश कभी सुखी–दुखी होते ही नहीं और श्री प्रभु कृपा से सम्पूर्ण विघ्न–बाधाओं से तर जाते हैं। जिसे गीता सिद्ध करती है कि–"मेरे में चित्त वाला होकर तू मेरी कृपा से सम्पूर्ण विघ्नों को तर जायेगा और यदि तू अहंकार के कारण मेरी बात नहीं सुनेगा तो तेरा पतन हो (जन्म–मरण के चक्कर में पड़ा रह) जायेगा।"

"मच्चितः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि।।"

(श्री मद्भागवतगीता १८/५८)

पूर्व जन्मों के पाप–पुण्य (प्रारब्ध) का फल तो पशु–पक्षी, कीट–पतंग आदि सभी जीव भोगते ही हैं फिर मनुष्य और उन जीवों में अन्तर ही क्या हुआ। अतः मनुष्य जन्म की विलक्षणता यही है कि वह भगवान का आश्रय लेकर अपने ज्ञान–बुद्धि से अहंकार को त्याग कर कल्याण के मार्ग में लग जाय क्योंकि–"अनेक जन्मों के बाद इस परम पुरुषार्थ के साधन रूप मनुष्य शरीर को, जो अनित्य होने पर भी अत्यन्त दुर्लभ है, पाकर बुद्धिमान पुरुष को चाहिये कि वह शीघ्र से शीघ्र, मृत्यु आने से पहले ही अपने कल्याण के लिये प्रयत्न कर ले। विषय भोग तो सभी योनियों में प्राप्त हो सकते हैं, इसलिये उनके संग्रह में इस अमूल्य जीवन को नहीं खोना चाहिये।

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते मनुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः।
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्युयावन्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात्।।

(श्रीमद्भगवत् ११/९/२९)

इन बातों को श्री मद्भागवत में और भी मार्मिक रूप से विवेचन किया गया है–"यह मनुष्य शरीर समस्त शुभ फलों की प्राप्ति का मूल है, और अत्यन्त दुर्लभ होने पर भी अनायास सुलभ हो गया है। इस संसार सागर से पार होने के लिये सुदृढ़ नौका है, जिसे गुरू रूप नाविक चलाता है और मैं (भगवान) वायु रूप होकर इसे लक्ष्य की ओर बढ़ाने में सहायता देता हूँ। इतनी सुविधा होने पर भी जो मनुष्य इस संसार–सागर से पार नहीं होता, वह अपनी आत्मा का हनन करने वाला अर्थात् पतन करने वाला है।" **नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरु कर्णधारम्। मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान** भवाब्धिं न तरेत् स आत्म हा।।

(श्रीमद्भगवत ११/२०/१७)

हे कमलनयन ! (भगवान श्रीकृष्ण) जो लोग आपके चरणों की शरण नहीं हैं और आपकी भक्ति से रहित होने के कारण जिनकी बुद्धि भी शुद्ध नहीं है, वे अपने को मुक्त तो मानते हैं पर वास्तव में वे बद्ध ही हैं। वे यदि कष्टपूर्वक साधन करके ऊँचे–ऊँचे पद पर भी पहुँच जाय, तो भी वहाँ से नीचे गिर जाते हैं। (जन्म मरण के चक्कर में पड़ जाते हैं)"

"येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्त मानिनस्त्वय्यस्त भावाद विशुद्ध बुद्धयः।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्य धोऽनादृतयुष्मदऽध्रयः।।"

(श्री मद्भागवत १०/२/३२)

एहि तनकर फल विषय न भाई। सवर्गउ स्वल्प अंत दुःखदाई।।

(मानस ७/४४/१)

वस्तुतः हमें इस शरीर को ही मरण धर्मा समझते हुये इसका सदुपयोग करें, यही मानव का विशिष्ट कर्तव्य है। परन्तु जब हम इसे अपना मानने की चेष्ट करेंगे तो अवश्य ही सुख एवं भोग्य पदार्थों में हमारी आसक्ति हठात् बढ़ जाती है। कारण कि इसमें स्थित पंञ्चमहाभूतों (आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी) की सत्वगुण (श्रोत्र, त्वचा, नेत्र रसना, घ्राण) तथा रजोगुण (वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ, गुदा) एवं तमोगुण (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) अंश के एक दूसरे से क्रमशः घनिष्ठ सम्बन्ध हैं, वैसे तो मनुष्य योनि में आये हरेक को इस बात का ज्ञान है कि सुख लेने की इच्छा से जो–जो भोग भोगे गये हैं उनसे उन्हें सुख न प्राप्त होकर धैर्य–विनष्टता, व्यग्रता, पश्चाताप, चिन्ता, रोग, निर्बलता एवं अशान्ति तथा दुःख–शोक–उद्वेग–राग–द्वेषादि ही प्राप्ति हुये। परिणामतः इसे केवल विचारशील पुरुष ही जान सकते हैं।

अतः कहा गया कि–"हमने भोगों को नहीं भोगा, भोगों ने ही हमें भोग लिया, हमने तप नहीं किया, हम ही तप्त हो गये; काल व्यतीत नहीं हुआ बल्कि हम ही व्यतीत हो गये, तृष्णा जीर्ण नहीं हुई बल्कि हम ही जीर्ण हो गये।"

"भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः,
तपो न तप्तं वयमेव तप्तः।
कालो न यातो वयमेव याताः,
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः।।

शास्त्रों की बातें सत्य है या असत्य ? भगवान को कौन, किसने, कहाँ देखा है ? संसार ही सत्य है इत्यादि संशय एवं भ्रम श्री प्रभु कृपा प्रसाद से ही मिटते हैं। संशय, भ्रम, विपर्यय (विपरीत भाव) तर्क–वितर्क तथा लौकिक और पारमार्थिक जितना भी ज्ञान है वह सब ज्ञान–स्वरूप परमात्मा का आभास–मात्र है। ज्ञान वही है जो स्वयं से जाना जाए और जानने योग्य एक मात्र परमात्मा ही है। जिन्हें जानने के बाद जीव के लिये कुछ भी जानना बाकी ही नहीं रहता। महाभारत के शान्ति पर्व में यह बात मिलती है कि–"सांगोपांग वेद पढ़कर भी जो वेदों के द्वारा जानने योग्य परमात्मा को नहीं जानता, वह मूढ़ केवल वेदों का बोझ ढोने वाला है।" यथा–

❋ ❋ ❋

जीवन का सनातन प्रश्न

प्रायः सभी मनुष्यों के जीवन में किसी न किसी समय ये प्रश्न आ बिना नहीं रहते कि 'मैं कहाँ से आया हूँ ?' और 'कहाँ जाऊँगा ?'—'को कुत आयातः'। बात स्पष्ट है कि अनभिज्ञ लोग या अल्पज्ञलोग इन । को टालने का प्रयत्न करते हैं। अधिकांश विद्वान् लोग विचार करके थक जाते हैं और उत्तर शायद ही पाते हैं। ये प्रश्न सनातन हैं और खोज भी पुरातन ही है। जगत्सृष्टि के समय से यह खोज सभी देशों में और सभी मतों तथा सभी दर्शनों में की जा रही है। विभिन्न मतवाले लोग परलोक तथा पुनर्जन्म के सम्बन्ध में अपने-अपने विचार भी प्रदर्शित करते रहे हैं। इन सब विचारों पर परामर्श किये बिना अपने-अपने आध्यात्मिक सिद्धान्त का स्थापित करना असम्भव नहीं तो, कठिन अवश्य है।

कठोपनिषद् तथा श्रीमद्भगवद्गीता का बीज-प्रश्न भी यही है। अन्यान्य उपनिषदों में, पुराणों में और दर्शन ग्रन्थों में भी इस विषय पर बड़ी चर्चा आयी है। वह ठीक ही है; क्योंकि पुनर्जन्म परलोक सम्बन्धी चर्चा के बिना अध्यात्म विचार हो ही नहीं सकता। कठोपनिषद् में—

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये-
ऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
तद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं
वराणामेष वरस्तृतीयः।।

(१/१/२०)

यह जो प्रश्न अधिकारी शिष्य नचिकेता ने गुरु ब्रह्म विद्याचार्य वैवस्वत यम से किया, वह प्रश्न सनातन ही है। गीता का द्वितयाध्याय, जो गीता का हार्द है और जिसमें अर्जुन के मुख्य प्रश्न का उत्तर आया है, वह सम्पूर्णतः कठोपनिषद् पर ही आधारित है। दोनों में **'नायं हन्ति न हन्यते'** इत्यादि कई सिद्धान्त-वाक्य समान रूप से उपलब्ध होते हैं, यह बात विद्वानों को विदित ही है।

योग
...तेपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक
...गुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

मालिक चंद शर्मा
बी 65, बालाजी
साहगंज, आगरा

कामधेनु की स्तुति

त्वं माता सर्वदेवानां त्वं च यज्ञस्य कारणम्। त्वं तीर्थं सर्वतीर्थानां नमस्तेऽस्तु सदानघे।
शशिसूर्यारुणा यस्या ललाटे वृषभध्वजः। सरस्वती च हुंकारे सर्वे नागाश्च कम्बले।
क्षुरपृष्ठे च गन्धर्वा वेदाश्चत्वार एव च। मुखाग्रे सर्वतीर्थानि स्थावराणि चराणि च।

(स्कन्द., ब्रह्म., धर्मारण्य. १०/१८-२०)

'... सब देवताओं की माता, यज्ञ की कारण रूपा और सम्पूर्ण तीर्थों की रूपा हो। हम ... तुम्हारे ललाट में चन्द्रमा, सूर्य, अरुणा और वृषभध्वज शंकर हैं, हुंकार में सरस्वती, ... में गन्धर्व और चारों वेद तथा मुखाग्र में चर एवं अचर सम्पूर्ण तीर्थ विराजमान हैं।'

प्रकाशक एवं मुद्रक :- विनय गजानन शर्मा द्वारा कम्पोज प्रिंटिंग प्रेस, बसाईकलाँ, ताजगंज, आगरा ... राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। सम्पादक ... दासमल ...